नारी
आंदोलन
का इतिहास

भाग ३

सामाजिक सुधार तथा स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियाँ

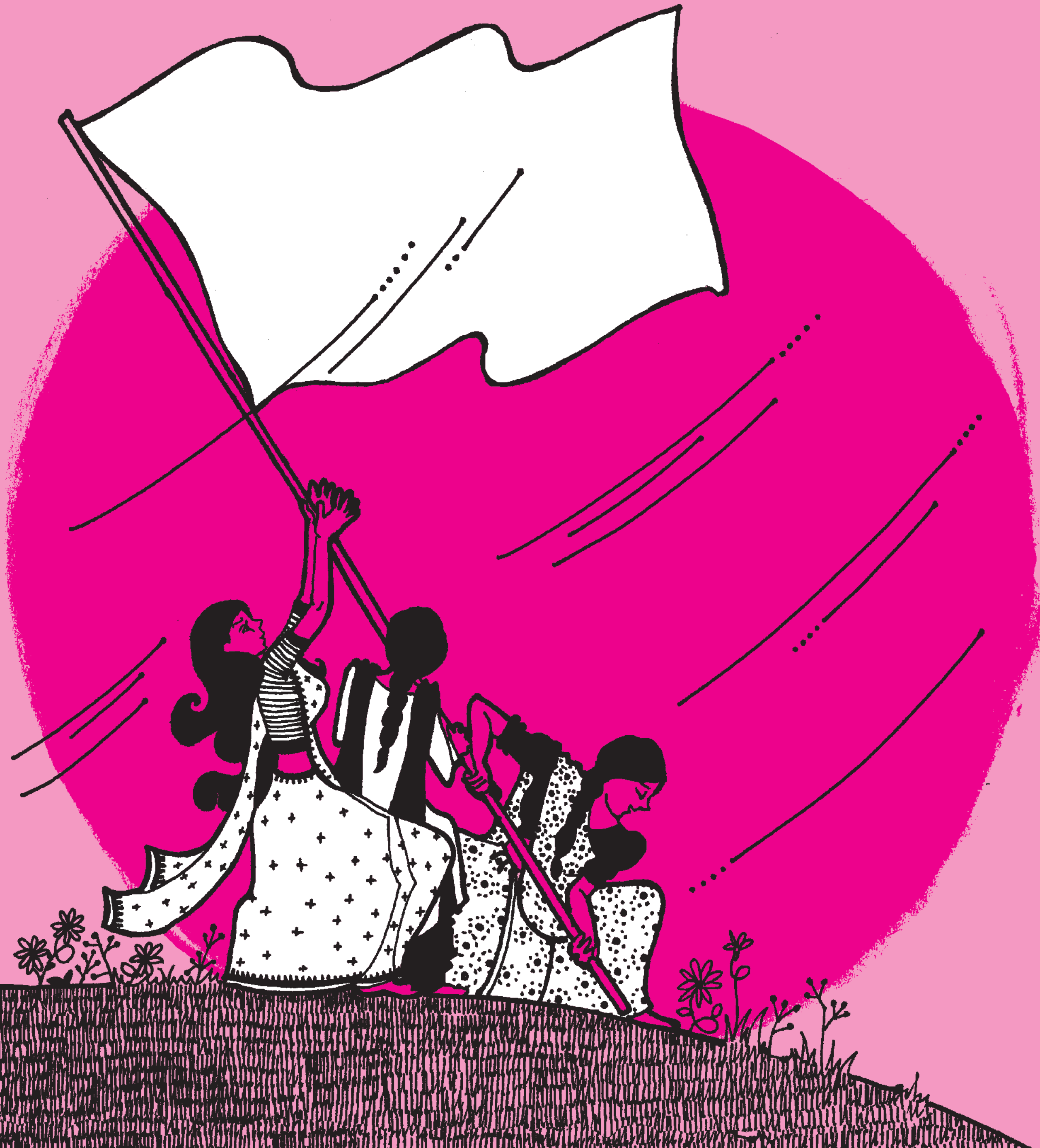

नारी
आंदोलन
का इतिहास

भाग ३

सामाजिक सुधार तथा स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियां

उन्नति

उन्नति

sahiyar

प्रस्तुतिः उन्नति - विकास शिक्षण संगठन एवं सहियर (स्त्री संगठन), 2009

प्रथम संस्करणः 500 प्रतियां, 2009

इस पुस्तिका का उपयोग, जन-शिक्षण के लिए, गैर-व्यावसायिक रूप से किया जा सकता है। उपयोग करते समय कृपया लेखिका एवं प्रकाशक का उल्लेख करें तथा हमें सूचित करें।

लेखिकाः डॉ. तृप्ति शाह, सहियर (स्त्री संगठन), वड़ोदरा

हिन्दी अनुवादः रामनरेश सोनी

प्रकाशकः उन्नति - विकास शिक्षण संगठन एवं सहियर (स्त्री संगठन)

प्राप्ति स्थानः

उन्नति - विकास शिक्षण संगठन
जी-1/200, आज़ाद सोसायटी,
आंबावाड़ी, अहमदाबाद-380 015
फोनः 079-26746145, 26733296
ई-मेल: sie@unnati.org

सहियर (स्त्री संगठन)
जी-3, शिवांजली फ्लैट्स, जाधव अमीश्रद्धा सोसायटी के पास
नवजीवन, आजवा रोड़, वड़ोदरा-390 019
फोनः 0265-2513482
ई-मेल: sahiyar@gmail.com

डिज़ाइन एवं कला निर्देशनः तरुण दीप गिरधर, अहमदाबाद

चित्रांकनः कविता अरविंद, चिड़िया उड़ व रणजित बालमूचु, ध लेम्ब स्टूडियो

ले-आउटः रमेश पटेल एवं हितेश गोलकिया

मुद्रकः बंसीधर ऑफसेट, अहमदाबाद. फोनः 079-26441967

अस्वीकरणः

यह पुस्तिका मुख्य रूप से स्थानीय कार्यकर्ताओं की जेंडर, पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था, स्त्रियों के गिरते स्थान के ऐतिहासिक मूल और समतापूर्ण विकास हेतु महिला सशक्तिकरण की जरूरत से संबंधित अवधारणाओं के संदर्भ में समझ बढ़ाने के आशय से तैयार की गई है।

इस पुस्तिका में वर्णित महिला मंडल की चर्चा में भाग लेने वाले सभी पात्र काल्पनिक हैं और किसी भी जीवित अथवा ऐतिहासिक पात्र के साथ उनकी समानता संयोग मात्र है। (किसी प्रसंग में ऐतिहासिक या वर्तमान ही में घटित घटनाओं के साथ यदि उनके अनुभव जुड़े हुये लगें, तो ऐसा सिर्फ मुद्दों और अवधारणाओं को स्पष्ट करने के उद्देश्य से किया गया है।)

इस पुस्तिका का उपयोग करने वाले व्यक्ति इस साहित्य का उपयोग समुदाय से प्राप्त अपनी ताज़ातरीन जानकारी के साथ जोड़कर तथा अधिकाधिक सूचनाओं की जरूरत पड़े तो विशेषज्ञों से और संदर्भ साहित्य से प्राप्त करके उनके साथ उपयोग कर सकते हैं। न यह कोई कानूनी साहित्य है, न ही इसका व्यावसायिक उद्देश्य से उपयोग किया जाए।
इस पुस्तिका में पृष्ठ नं-२५ पर दिखाये हुए मानचित्र पैमाने के अनुसार नहीं हैं।

प्रस्तावनाः अभिनन्दनीय प्रयास

नारी आंदोलन के इतिहास तथा वर्तमान की चुनौतियों को दर्शाने वाली इस पुस्तिका श्रृंखला का स्वागत करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष की अनुभूति हो रही है। इस पुस्तिका के प्रकाशन में विकास-शिक्षण में कार्यरत प्रतिष्ठित संस्था 'उन्नति-विकास शिक्षण संगठन' और 'सहियर' का यह संयुक्त प्रयास प्रशंसनीय है। गुजरात तथा गुजरात के बाहर पीड़ित वर्गों के आंदोलन से जुड़ी सक्रिय कार्यकर्ता तृप्ति शाह को किसी परिचय की आवश्यकता नहीं हैं, बल्कि एक इनसाईडर के रूप में महिला आंदोलन का आलेखन तृप्ति द्वारा हुआ है, इसका खास उल्लेख करना मुझे जरूरी लगता है।

भारत में नारी आंदोलन के इतिहास के आलेखन, महिला अध्ययन के महत्वपूर्ण अंशों के रूप में हुए हैं। इसके अलावा, नारी समूहों के विभिन्न मुद्दों पर संघर्ष तथा प्रतिक्रिया के आलेखन विविध रूप में भी उपलब्ध हैं। अध्ययनकर्ताओं ने पश्चिम के नारी आंदोलन की प्रक्रिया की तुलना भारतीय नारी आंदोलन के साथ भी की है। इसके बावजूद मैं यहां प्रस्तुत पुस्तिका श्रृंखला की विशेष उपयुक्तता का संक्षेप में वर्णन करना चाहूंगी।

समाज परिवर्तन के लिए तथा नारी समानता व स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत् स्थानीय कार्यकर्ताओं और अध्ययनकर्ताओं के लिए महिलाओं का गिरता स्थान, पितृसत्तात्मक ढांचा और मूल्य तथा इनसे मुक्ति पाने हेतु प्रयासों को समझना अत्यंत आवश्यक है। नारी आंदोलन में केवल शौर्य, उत्साह या शहादत ही पर्याप्त नहीं हैं। वह केवल किसी मुद्दे पर आधारित चुनौती ही नहीं है, बल्कि वह समग्र पितृसत्तात्मक और सामाजिक-आर्थिक ढांचे को चुनौती देता है। इसके अलावा नारी का दमन-शोषण-अवहेलना किसी एक विशिष्ट घटना या विशिष्ट ढांचे द्वारा नहीं होता, बल्कि यह समाज के मूल में व्याप्त है और सर्वव्यापक है। अतः इस मूल को समझना और चुनौती देना आवश्यक है।

वर्तमान में स्वास्थ्य, पर्यावरण सुरक्षा, मानवाधिकार रक्षा, दलित, पीड़ित वर्गों की समस्याओं आदि जैसे विविध मुद्दों पर स्थापित वर्ग के विरुद्ध अनेक गैर-सरकारी

संस्थाएं प्रयासरत हैं। प्रत्येक स्तर पर संघर्ष और चुनौती अनिवार्य होती है। अपने कार्य में जेंडर आधारित न्याय लाने हेतु यह आवश्यक है कि हर स्तर के कार्यकर्ता को नारी आंदोलन के विविध स्वरूपों, रणनीतियों तथा उससे जुड़ी सही-गलत की जानकारी व समझ हो। मेरा मानना है कि यह पुस्तक श्रृंखला उनके लिए मार्गदर्शक साबित होगी।

किसी भी मुद्दे या घटना के अनुरूप रणनीति तय करने के लिए तात्कालिक समझ आवश्यक है, परंतु स्थानीय कार्यकर्ता जब समाज में बुनियादी परिवर्तन लाने की कोशिश कर रहे हों, तब विभिन्न बारीकियों को समझना उनके लिए अत्यंत आवश्यक है। इसके अलावा, ये बारीकियां किसी भी प्रतिक्रिया के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हताशा-निराशा-पीछे हटने की प्रवृत्ति को समझने में उपयोगी सिद्ध होती हैं।

किसी भी आंदोलन के आलेखन में पूर्वभूमिका का महत्व होता है। इसके अलावा कुछ मूलभूत विचारों को समझना जरूरी होता है। इतना ही नहीं, इन अवधारणाओं की समाज के ढांचे और मूल्य व्यवस्था के साथ जुड़ाव संबंधी स्पष्टता आंदोलन के विविध आविर्भावों के बारे में सुझाव दे सकती है। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के भूतकाल की समझ वर्तमान को पहचानने के लिए आवश्यक है। भारतीय समाज का इतिहास सदियों पुराना है। भारतीय समाज समरूप नहीं बल्कि विविधतापूर्ण है। यह जाति, वर्ग, भाषा, लिंग जैसी विविधताओं से भरा हुआ है। वैश्विक स्तर के संदर्भ में भारतीय आंदोलन की समझ घटनाओं की समानता और विविधता का परिचय देती है। खासतौर पर यह कार्यकर्ताओं के लिए जरूरी, व्यापक दृष्टि दे सकता है। संक्षेप में, मेरी धारणा है कि यह पुस्तक श्रृंखला नारी आंदोलन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, अंतरराष्ट्रीय फलक, वर्तमान आंदोलन के क्षेत्र में मुद्दों और चुनौतियों को समझने के लिए स्थानीय कार्यकर्ताओं तथा अध्ययनकर्ताओं हेतु उपयोगी होगी। इसके अलावा इस पुस्तक श्रृंखला में सरल भाषा, लोकगीतों, रेखाचित्रों आदि का प्रयोग हुआ है, जो उपेक्षित बहनों को आंदोलन की आवश्यकताएं समझाने में स्थानीय कार्यकर्ताओं के लिए सहायक होंगे।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान तथा कम्युनिस्ट आंदोलन के दौरान कार्यकर्ताओं को तैयार करने के लिए स्टडी सर्किल (अध्ययन समूहों) का महत्त्व समझा गया था। इन समूहों द्वारा कार्यकर्ताओं में आंदोलन के विविध चरणों और मुद्दों पर व्यवस्थित सघन-गहन विश्लेषण करने का माहौल बना। इसे पुनः जीवित करने की आवश्यकता लगती है। इस संदर्भ में इस पुस्तिका श्रृंखला जैसे प्रयोग सहायक होंगे।

पुनः 'उन्नति - विकास शिक्षण संगठन' तथा तृप्ति शाह एवं 'सहियर' का इस अभिनव के लिए अभिनंदन!

नीरा देसाई
जनवरी-2009

अर्पण

इस पुस्तिका श्रृंखला की प्रस्तावना लिखते समय नीरा बहन कैंसर से लड़ रही थीं। श्रृंखला की प्रथम पुस्तक उनके हाथ में देते समय हमें आनंद की अनुभूति हुई थी। दुर्भाग्यवश इसके बाद की पुस्तिका प्रकाशित होने से पहले 25 जून, 2009 की रात को नीरा बहन ने हमसे विदा ले ली। ऐसा अनुभव हुआ कि नारी आंदोलन और नारी अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण स्रोत और संकट काल के साथी को हमने खो दिया है।

डॉ. नीरा देसाई भारत में नारी अध्ययन तथा अनुसंधान की नींव डालने वालों में से एक हैं। जब महिलाओं की समस्याओं पर शायद ही कोई अनुसंधान होता था, तब 1957 में उन्होंने 'भारतीय समाज में महिला जीवन' नामक शोध पुस्तक लिखी थी। वे भारत के प्रथम नारी अध्ययन केन्द्र, एस.एन.डी.टी. युनिवर्सिटी, मुंबई की संस्थापक-निदेशक थीं। उन्होंने महिलाओं की विविध समस्याओं तथा नारी आंदोलन पर गुजराती और अंग्रेजी में अनेक महत्वपूर्ण अनुसंधान और लेख प्रकाशित किए हैं। डॉ. नीरा देसाई की विशेषता यह है कि वे मात्र अध्येता ही नहीं, बल्कि शुरूआत से ही भारत के नारी आंदोलन से जुड़ी सक्रिय समर्थक भी रही थी।

जब नारी आंदोलन सहित तमाम प्रगतिशील आंदोलन आज की विकट एवं प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करने की कोशिश कर रहे हैं तब नीरा बहन की विदाई हमारे जैसे अनेक लोगों को व्यक्तिगत एवं संगठन स्तर पर वास्तव में अपूरणीय क्षति का अनुभव कराती है। जैसे कि एक युग का अंत हो गया हो! हम इस श्रृंखला की बाकी की पुस्तिकाओं को नीरा बहन को अर्पण करके कुछ हद तक उनका आभार स्वीकारने की कोशिश कर रहे हैं।

तृप्ति शाह **दीपा सोनपाल**

अनुक्रम

आभार 8

भूमिका और परिचय 9

पुस्तिका श्रृंखला का उपयोग 17

अंग्रेजी शासनः 1857 के विप्लव में दलित, आदिवासी स्त्रियां 20

महिलाओं के सवालः सुधारवादी, पुनरुत्थानवादी, अंग्रेज और दलित-बहुजन समाज 34

संघर्ष जारी है... शिक्षा और समानता के लिए 46

नारी संस्थाओं की शुरूआत और स्वातंत्र्य संग्राम में स्त्रियां 56

क्रांतिकारी ओरते 70

स्त्रियों को क्या मिला? क्या न मिला? 78

स्वतंत्र भारत के निर्माण में स्त्रियां 88

जन-आंदोलनों में स्त्रियों का योगदान 102

संदर्भ साहित्य की सूची 118

आभार

हम 'उन्नति' के संस्थापक - निदेशक श्री बिनॉय आचार्य के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं कि उन्होंने नारी आंदोलन के इतिहास की पुस्तिकाओं को स्थानीय कार्यकर्ताओं के लिए तैयार करने हेतु सर्वप्रथम सुझाव दिया और उसके लिए निरंतर प्रोत्साहित किया।

पुस्तिकाओं को तैयार करने में फोटोकॉपी करने से लेकर डाक भेजना, साहित्य ढूंढ़ना, चाय पानी की व्यवस्था आदि कामों में उन्नति एवं सहियर के साथियों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ, जिसमें उन्नति के कमलेश भाई राठोड़, लक्ष्मणसिंह बी. राठोड़, लक्ष्मणसिंह एस. राठोड़, भवानसिंह राठोड़, सरदारसिंह राठोड़, करणसिंह राठोड़, रेनिसन एफ. रिबेलो एवं बीनू जॉर्ज तथा सहियर के कमल ठाकर शामिल हैं। साथ ही लेखा टीम में प्रेयस मेवाड़ा, धर्मिष्ठा हलपति एवं बिपिन त्रिपाठी ने हिसाब-किताब एवं वित्त संबंधी पहलुओं का ध्यान रखा।

उन्नति के रमेश पटेल, हितेश गोलकिया एवं सहियर की रेशमा वोरा ने पुस्तिका की अनेक प्रतियों को बारंबार सुधारने एवं टाईप करने में अपना पूर्ण सहयोग दिया। हिन्दी अनुवाद का मूल लेखों के साथ मिलान करके उसमें संशोधन हेतु सुझाव देने के लिए उन्नति की शम्पा बटब्याल, गीता शर्मा एवं स्वप्नी शाह तथा सहियर की रेशमा वोरा, कमल ठाकर, सुनंदा तायड़े, रीना जगताप, हेतल परमार, रीटा चोकसी, सूर्यकांता शाह, दीपाली घेलाणी, प्रिया संकपाल, प्रीतल ठाकर, राधा बाबी एवं साजेदा शेख के प्रति हम आभारी हैं।

जब से यह पुस्तिका वैचारिक अवस्था में थी तब से लेकर इसके पहले प्रारूप तैयार होने तक हमें नैतिक समर्थन एवं आलोचनात्मक सुझाव, मार्गदर्शक साहित्य एवं संदर्भ साहित्य प्रदान करने के लिए नारी अध्ययन एवं आंदोलन के अग्रणी साथी नीराबहन देसाई, विभूतिबहन पटेल, सोनलबहन शुक्ल, उषाबहन ठक्कर, सोफिया खान, रोहित प्रजापति, फादर जिम्मी डाभी, हसीना खान तथा संध्या गोखले ने सहयोग दिया। हम इन सबके प्रति ह्रदय से अभारी हैं। समाविष्ट भाग-3 में आदिवासी और मुसलमान ओरतो के संघर्ष के बारे में लिखने हेतु अपने अप्रकाशित लेख उपलब्ध कराने के लिए क्रमशः सोनल राठवा और नसीरुद्दीन खान के विशेषतः आभारी है। इन सभी के योगदान से ही इस स्तर की श्रृंखला का सृजन करना संभव हो पाया है।

भूमिका और परिचय

इस श्रृंखला का सृजन क्यों?

मानवता और समानता पर आधारित न्यायी समाज के सृजन की जद्दोज़हद में यदि आधी मानव जाति का दृष्टिकोण शामिल न हो, तो नई दुनिया का, बेहतर दुनिया का चित्र अधूरा ही रहेगा। पिछले दशक से इस बात को अधिकाधिक स्वीकृति मिलती गई है और इसीलिए विभिन्न क्षेत्रों में विकास तथा समाज परिवर्तन के लिए काम करने वाली संस्थाओं, संगठनों और लोक आंदोलनों के कार्यकर्ताओं में महिलाओं की भागीदारी, महिला विकास, जेंडर, महिला सशक्तिकरण जैसी अवधारणाएं प्रचलित हुई हैं।

सवाल यह है कि इस चरण में ही महिलाओं के मुद्दे क्यों सामने आए? क्या ये नए सवाल हैं या उनका कोई इतिहास भी है? और यदि इतिहास है, तो क्या उसे जानने और समझने की ज़रूरत नहीं है?

इतिहास शब्द सुनकर सामान्यतः राजा-महाराजाओं के साम्राज्य, अधिकारियों, योद्धाओं, नेताओं के पराक्रम के कालानुक्रम का चित्र आंखों के सामने आता है, क्योंकि हमारे स्कूलों में ऐसा ही इतिहास हमें पढ़ाया जाता है। इसीलिए सामान्य आदमी के मन में इतिहास जानने की कोई जिज्ञासा नहीं रहती, लेकिन इतिहास लेखन का एक महत्वपूर्ण प्रकार है सामाजिक इतिहास। इसमें राजा-महाराजाओं की नहीं, बल्कि समाज के विभिन्न वर्गों के जीवन-संघर्ष, कार्य और समाज को बदलने के प्रयासों आदि की बात भी होती है। हमारे आज की बुनियाद हमारे इतिहास में निहित है। यदि इतिहास को समझेंगे, तभी आने वाले कल के सृजन के लिए प्रभावी काम कर सकेंगे। हालांकि ऐसा सामाजिक इतिहास भी यदि मात्र पुरुष की कहानी (His Story) बन कर रह जाए और इसमें से महिला की कहानी (Her Story) अदृश्य रहे, तो इतिहास अधूरा ही होगा। अतः विकास या समाज परिवर्तन के कार्य से जुड़े तमाम कार्यकर्ताओं के लिए नारी आंदोलन का इतिहास जानना व समझना ज़रूरी है।

नारी आंदोलन का इतिहास मात्र स्त्रियों का इतिहास नहीं है, क्योंकि नारी आंदोलन समाज परिवर्तन के आंदोलन के साथ गहनता से जुड़ा हुआ है। जब-जब समाज में कोई बड़ी घटना घटती है, उथल-पुथल होती है, तब उसमें महिलाएं अहम भूमिका निभाती हैं।

विश्व की तमाम महान क्रांतियों और परिवर्तनों में स्त्रियों की भूमिका क्या थी, उनका क्या योगदान था और उसके परिणामस्वरूप वे क्या प्राप्त कर सकीं तथा क्या न पा सकीं, इन सबका बोधपाठ हमारी आगामी रणनीति तय करने में उपयोगी होता है।

वर्तमान चुनौतियां और इतिहास

60 के दशक में पश्चिम के देशों में शुरू हुए नारीवादी आंदोलन के साथ-साथ नारी अध्ययन का भी विकास हुआ और महिलाओं की परिस्थिति समझने के लिए दृष्टिकोणों का भी विकास हुआ। पितृसत्तात्मक समाज व्यवस्था के ताने-बाने को उधेड़ने की शुरूआत हुई। कुदरती लिंग (Sex) के खिलाफ स्त्री-पुरुष की समाज प्रेरित व्याख्या, 'जेंडर' की संकल्पना विकसित हुई और इसका प्रभाव यूनाइटेड नेशन्स सहित तमाम अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं पर पड़ा। यह संभव ही नहीं था कि उनके विकास कार्यक्रमों व नीतियों पर विश्व भर में फैल रहे नारी आंदोलन का प्रभाव न पड़े।

मैक्सिको, नैरोबी और उसके बाद बीजिंग में हुई यू.एन.ओ. की अंतरराष्ट्रीय महिला परिषदों के बाद आज मुख्य धारा में जेंडर की सहभागिता - 'जेंडर मेनस्ट्रीमिंग' की बातें दुनिया भर की सरकारें और गैर-सरकारी संस्थाएं स्वीकारने लगी हैं। इसकी शुरूआत 1970 में ईस्टर बोसरप की डब्ल्यू.आई.डी. (विकास में स्त्रियां) के नाम से प्रचलित दृष्टिकोण से हुई थी। उन्होंने स्त्रियों की आर्थिक सहभागिता को मुद्दा बना कर विकास के कार्यक्रमों में स्त्री जिस तरह बाहर रह जाती है, उसकी बात की और स्त्री को विकास की प्रक्रिया में जोड़ने की पैरवी शुरू की। इसके बाद डब्ल्यू.ए.डी. (विकास और स्त्रियां) तथा जी.ए.डी. (जेंडर और विकास) के रूप में प्रचलित दृष्टिकोणों द्वारा विकास की कथित मुख्य धारा और महिलाओं के स्थान (पोज़िशन) पर होने वाले उसके प्रभाव तथा समाज के तमाम ढांचों का स्त्री-पुरुष के बीच के सत्ता के संबंधों में स्त्रियों के गिरते

स्थान का विश्लेषण किया गया। उसमें मूलभूत परिवर्तन की ज़रूरत के बारे में चर्चा की शुरुआत हुई। इसके फलस्वरूप आज विकास तथा समाज परिवर्तन के तमाम क्षेत्रों में स्त्रियों की स्थिति (कंडीशन) और स्त्रियों के स्थान (पोजिशन) सम्बंधी समस्याओं को शामिल किया जाने लगा है।

भारत की बात करें, तो 70 के दशक में कुछ छोटे-छोटे स्वायत्त समूहों ने बलात्कार, दहेज, महिलाओं पर हिंसा, पारिवारिक कानून जैसे मुद्दों से लेकर समाज के विशाल समूह को छूने वाले तमाम मुद्दों में सहभागिता दर्ज कराई है। तब से लेकर इन वर्षों के दौरान नारी आंदोलन की व्यापकता और प्रभाव बढ़ा है। इसमें विभिन्न वर्ग, जाति, धर्म, यौनिक अभिरुचि, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भाषा की पृष्ठभूमि वाले कार्यकर्ताओं तथा विविध प्रकार के महिला समूहों, बचत समूहों, लोक संगठनों ने भी सहभागिता दिखाई है। भारत तथा दुनिया के नारी आंदोलनों के सतत प्रयासों के फलस्वरूप ऐसा माहौल बना है, जिसमें किसी भी राजनीतिक दल, सरकार, फंडिंग एजेंसियों, विकास के कार्य करने वाले गैर-सरकारी संगठनों या जन आंदोलनों के लिए महिलाओं के मुद्दों की अवहेलना करना असंभव हो गया है। इसे विश्व और भारत के नारी आंदोलनों की सफलता कहा जा सकता है।

दूसरी तरफ, समाज के पुरुष प्रधान-पितृसत्तात्मक ढांचे के साथ वैश्वीकरण, उदारीकरण, धर्मांधता, कौमवाद तथा जातिवाद जैसी समस्याओं के माहौल जितने अधिक मजबूत ढंग से गुंथते जा रहे हैं उसी रूप में महिलाओं की समस्याओं की जटिलता भी बढ़ती जा रही है।

एक तरफ पुरुषों की जागीर माने जाने वाले व्यवसायों और शैक्षणिक संस्थानों में सफलता के सोपान हासिल कर रही स्त्रियों के सक्षम व्यक्तित्व की तस्वीरें देखने को मिलती हैं, तो दूसरी तरफ बेटियों की घटती संख्या, दहेज व सती जैसी समस्याएं नए रूप में उभर रही हैं, जिनसे महिलाओं के अस्तित्व पर खतरा मंडराने लगा है।

समलैंगिक संबंधों या अलग प्रकार के यौन संबंधों वाले लोगों, वेश्या व्यवसाय से जुड़ी स्त्रियों के संगठनों द्वारा इन प्रतिबंधित माने जाने वाले विषयों की सार्वजनिक चर्चा तथा विरोध प्रदर्शनों को स्वीकृति मिलती दिखती है, तो साथ ही साथ सदियों पुरानी पारिवारिक हिंसा के प्रकार और प्रमाण दोनों बढ़ रहे हैं।

विकास नीति के फलस्वरूप समाज के सीमांत समूह और महिलाएं अधिकाधिक संख्या में हाशिये पर धकेले जा रहे हैं। इसके विरुद्ध आदिवासी, दलित, समुद्र तट के समुदाय, अल्पसंख्यक, आदि जीवन निर्वाह, प्राकृतिक संसाधनों पर अंकुश, हिंसा तथा बुनियादी मुद्दों को लेकर सतत संघर्ष कर रहे हैं। जैसे-जैसे समाज के सीमांत समूहों का संघर्ष आगे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे उसमें महिलाओं की सहभागिता ही नहीं, बल्कि नेतृत्व भी आगे बढ़ता दिखाई दे रहा है। अपने कार्यक्षेत्र में सफल संघर्ष के अनेक उदाहरणों की प्रेरणादायी बातें सामने आती हैं, तो कभी-कभी वैश्वीकरण, धर्मांधता, कौमवाद, जातिवाद के तानेबाने में बनी पितृसत्ता के खिलाफ संघर्ष में दो कदम आगे तथा चार कदम पीछे जैसी स्थिति का अनुभव होता है। इसके प्रतिबिंब के रूप में प्रशिक्षण कार्यक्रमों, समन्वय बैठकों तथा स्थानीय कार्यकर्ताओं के साथ संवाद में, 'अब आगे क्यों?' या 'आगे किस तरह बढ़ा जाए?' जैसे सवाल बार-बार उठते हैं।

इस चरण में अनेक कार्यकर्ताओं का अनुभव दर्शाता है कि उभर रहे कुछ सवालों की जटिलता को समझने की निशानी हमारे संघर्ष के इतिहास से मिल सकती है, तो साथ ही साथ प्रेरणा देने वाले पात्रों और घटनाओं की भी कमी नहीं है। सफलता दूर की कौड़ी लगती हो, तब निराशा से बचने का रास्ता और समस्याओं से निपटने का आत्मविश्वास इतिहास के अध्ययन से ही जन्म लेता है। इसके अलावा समाज की दशा और समाज परिवर्तन की दिशा समझने की सैद्धांतिक स्पष्टता भी समझ में आती है। 'उन्नति-विकास शिक्षण संगठन' तथा 'सहियर' (स्त्री संगठन) मिल कर इस पुस्तिका श्रृंखला का प्रकाशन इस आशय से कर रहे हैं कि स्थानीय कार्यकर्ताओं को सरल भाषा में सामग्री उपलब्ध हो।

विचार का उद्भव और प्रक्रिया

इस संयुक्त प्रकाशन के विचार का उद्भव 2004 में हुआ। जेंडर सेंसिटाइज़ेशन हेतु प्रशिक्षणों में नारी आंदोलन के इतिहास के विषय पर शायद ही कभी चर्चा होती है। इन्हीं परिस्थितियों के बीच 2004 में अहमदाबाद में आयोजित जेंडर मेनस्ट्रीमिंग के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम में उन्नति के संस्थापक-निदेशक श्री बिनॉय आचार्य के आग्रह पर एक सत्र नारी आंदोलन के बारे में रखा गया था। 'सहियर' की सुश्री तृप्ति शाह ने इसका संचालन किया। तब, प्रशिक्षणार्थियों के लिए इस विषय पर उपयोगी साहित्य की ज़रूरत महसूस हुई। फरवरी, 2007 में गुजरात

के विभिन्न संगठनों के स्थानीय कार्यकर्ताओं के बीच गुजरात के नारी आंदोलन के क्षेत्रीय अनुभवों, नारीवादी विचारधारा तथा आगामी रणनीतियों के बारे में आयोजित परिसंवाद के दौरान भी ऐसे साहित्य की ज़रूरत महसूस की गई।

नारी आंदोलन का इतिहास दर्शाने वाली अधिकांश महत्वपूर्ण पुस्तकें अंग्रेजी भाषा में लिखी गई हैं और स्थानीय भाषाओं में भी इससे पहले कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन हुए हैं। परंतु, ऐसे साहित्य की कमी खलती थी जिसे स्थानीय कार्यकर्ता समझ सकें तथा दूसरों को समझाने में उपयोग कर सकें। अन्य कार्यों के दबाव के कारण यह काम शुरू नहीं किया जा सका।

जून, 2007 में दुबारा 'उन्नति' की ओर से पहल की गई और दीपा सोनपाल, गीता शर्मा तथा तृप्ति शाह ने इस दिशा में तत्काल ठोस कदम उठाने पर चर्चा की। शुरूआत में 70 से 80 पृष्ठों की एक सचित्र पुस्तिका तैयार करने का विचार था। परंतु जैसे-जैसे पुस्तिका में शामिल किए जाने वाले विषयों पर सोचा गया व अन्य मित्रों, विषय-विशेषज्ञों के साथ चर्चा हुई, तब काल और स्थल के विस्तार, मुद्दों, विवरणों, विश्लेषण आदि तमाम बातों को जोड़ना ज़रूरी लगा। इसे एक-दो माह में पूरा करने की अपेक्षा थी, लेकिन तृप्ति शाह की अस्वस्थता और रोजमर्रा के कार्यों के बीच एक वर्ष से अधिक समय में यह पुस्तिका टुकड़ों में लिखी गई। इस बीच 'उन्नति' के तमाम मित्रों के धैर्य की परीक्षा हुई, परंतु सभी के धैर्यपूर्ण आग्रह और सतत सहयोग के कारण अंततः हम यह काम पूरा कर सके हैं। आज यह छोटी सी पुस्तिका बढ़ते-बढ़ते चार अलग-अलग पुस्तिकाओं की श्रृंखला का रूप ले चुकी है।

विषयवस्तु और प्रस्तुति

प्रथम भाग, **'स्त्री जीवन संघर्षः प्राचीन काल से भक्ति आंदोलन तक'**, में जेंडर, पितृसत्तात्मक जैसी नारीवादी अवधारणाओं के अलावा प्राचीन काल से भक्ति आंदोलन तक के समय का समावेश किया गया है। इसमें भारत में पितृसत्तात्मक ढांचे के निर्माण की बात की गई है। जाति प्रथा तथा पितृसत्ता के तानेबाने द्वारा स्थापित ब्राह्मणवादी-पितृसत्ता की हल्की सी झलक दी गई है। हिन्दू धर्म के ब्राह्मणवाद के खिलाफ चुनौती के रूप में शुरू हुए बौद्ध धर्म तथा भक्ति आंदोलन की बात एवं इसमें महिलाओं की भूमिका का

उल्लेख किया गया है। इसी दौरान भारत में प्रचलित हो रहे इस्लाम का उल्लेख किया है। इस्लाम से पहले अरबस्तान में प्रचलित धर्म की तुलना में इस्लाम में मौजूद उदारवादी पहलू आज व्यवहार में दिखाई नहीं देते। यह बताया गया है कि पितृसत्ता के खिलाफ ये सभी प्रयत्न अपने स्थान, काल और उस समय की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति से प्रेरित थे और इस वजह से सीमित थे।

दूसरे भाग, **'स्त्री समानता और मताधिकारः विश्व में नारी आंदोलन'** में १९वीं सदी में, स्त्री समानता तथा मताधिकार के लिए विश्व में हुए संघर्ष की बात है। इस भाग में इस बात की जांच की गई है कि दुनिया में कोई भी बड़ा परिवर्तन स्त्रियों के योगदान के बिना संभव नहीं हुआ और स्त्री समानता के संघर्ष भी समाज के परिवर्तन के संघर्षों के साथ ही विकसित हुए हैं। इसमें पश्चिम के देशों में साम्यवादी व्यवस्था में से पूंजीवादी उत्पादन पद्धति लाने वाले समाज परिवर्तन के संघर्षों के साथ-साथ स्त्रियों के संघर्ष जिस तरह विकसित हुए उसकी बात, इंग्लैंड में हुए चार्टिस्ट आंदोलन, नवजागरण काल के विचारकों के स्त्रियों के प्रति विचार, फ्रांस की क्रांति, अमेरिका की गुलामी से मुक्ति का आंदोलन, अंतरराष्ट्रीय महिला दिवस का इतिहास एवं रूस की पूंजीवाद विरोधी क्रांति में स्त्रियों का योगदान और इन सब का स्त्रियों के अधिकारों के आंदोलन से संबंधों का समावेश किया है।

तीसरे भाग, **'सामाजिक सुधार तथा स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियां'** में भारत में सामाजिक सुधार और उसके बाद स्वतंत्रता आंदोलन के काल का समावेश किया गया है। अंग्रेजी शासन के खिलाफ 1857 की क्रांति में स्त्रियों खासकर दलित, आदिवासी स्त्रियों की भूमिका, सुधार आंदोलन में सुधारक, पुनरुत्थानवादी, अंग्रेज एवं दलित बहुजन समाज के सुधारक एवं सावित्री बाई फुले या पंडित रमाबाई जैसी स्त्रियों की भूमिका, शिक्षा एवं समानता के लिए रकमाबाई, रुकैया सखावत हुसैन जैसी स्त्रियों का संघर्ष, भारत में स्त्री संस्थानों की शुरूआत और आज़ादी की लड़ाई में अहिंसक सत्याग्रह, क्रांतिकारी समूह एवं आजाद हिंद फौज आदि तमाम मोर्चो पर स्त्रियों द्वारा किए गए योगदान का विचार कई प्रतिनिधि स्त्रियों के जीवन कथा के द्वारा पेश किया गया है। आजादी की लड़ाई में भाग लेने के बाद स्वतंत्र भारत में स्त्रियों को क्या मिला और क्या नहीं मिला उसका विवरण

दिया है और 60-70 के दशक में हुए जन आंदोलन की बात का समावेश किया गया है।

चौथे व अंतिम भाग, **'नारी मुक्ति आंदोलनः समस्याएं और चुनौतियां'** में समकालीन नारी आंदोलन की प्रस्तावना, उसके शुरूआत के समय और हाल की समस्याओं और चुनौतियों को शामिल करने की कोशिश की गई है।

यहां यह स्पष्ट करना ज़रूरी है कि प्राचीन काल से आज तक के समग्र इतिहास को जांचने का हमारा आशय नहीं है। जिस उद्देश्य से यह श्रृंखला तैयार की गई है उसके लिए ऐसा करना ज़रूरी भी नहीं है। इस श्रृंखला का उद्देश्य ऊपर दर्शाए विस्तृत समय के दौरान, भारत और विश्व में पितृसत्तात्मक व्यवस्था के बदलते स्वरूप के खिलाफ विविध चरणों में महिलाओं द्वारा किए गए विरोध तथा संघर्ष के विचार को स्थानीय कार्यकर्ताओं तक पहुंचाना है। इस आशय से श्रृंखला के विभिन्न भागों में प्रस्तुति की पद्धति और विवरणों की गहराई में भी थोड़ी विविधता है। जैसे, श्रृंखला की प्रथम पुस्तिका में भाषा तथा प्रस्तुति यथासंभव सरल रखने की कोशिश की गई है। दूसरे भाग में विश्व के नारी आंदोलन की बात करते समय उस काल में यूरोप की आर्थिक एवं राजनीतिक व्यवस्था के बारे में विवरण तुलनात्मक रूप से अधिक गहराई से दिया गया है। आज हम जिस लोकतंत्र और सार्वभौमिक मताधिकार को सहज रूप से पूंजीवादी समाज की देन मानते हैं, उसे पाने के लिए जिस तरह सीमांत समूहों और खासकर महिलाओं को पूंजीवाद के शुरूआती चरण में संघर्ष करने पड़े तथा बलिदान देने पड़े, उन्हें समझने के लिए तत्कालीन परिस्थितियों को जानना बहुत ज़रूरी है। भारत के पाठक इससे अपरिचित होंगे, ऐसा सोचकर ये विवरण अधिक विस्तारपूर्वक दिये गये हैं। जबकि भारत के इतिहास के प्राथमिक विवरण से पाठक परिचित होंगे, ऐसा मान कर उसमें अधिक ज़ोर महिलाओं की भूमिका पर दिया गया है।

ऊपर के तीनों भागों में सम्बद्ध काल के संघर्ष और समस्याओं को कुछ महिलाओं की प्रेरणादायी जीवन गाथा के द्वारा समझाने की पद्धति अपनाई गई है। चौथे भाग में, 1970 के बाद हुए आंदोलन की बात करते समय संबंधित मुद्दों के इर्दगिर्द चर्चा की गई है। प्रत्येक मुद्दे पर वर्तमान नारीवादी समझ, उसके खिलाफ हुए विरोध की महत्वपूर्ण घटनाओं और उनका

विश्लेषण करने की कोशिश की गई है ताकि, पाठक अपने संगठन या कार्यक्षेत्र में होने वाली घटनाओं को इन मुद्दों के साथ जोड़ते हुए अपनी कार्यनीति में शामिल कर सकें।

सीमाएं और अपेक्षा

इस श्रृंखला में नारी आंदोलन के तमाम महत्त्वपूर्ण मुद्दों और घटनाओं को शामिल करने की कोशिश की गई है। इसके बावजूद यह संभव है कि कुछ मुद्दे छूट गए हों, किसी कारणवश उन्हें शामिल न किया गया हो या उन्हें पर्याप्त न्याय न दिया जा सका हो। प्रत्येक पुस्तिका में स्त्री-पुरुष समानता के अलावा प्रभुत्वशाली वर्ग, जाति और धर्म से ऊपर उठ कर तमाम सीमांत समूहों के दृष्टिकोण और उनके अनुभवों के उदाहरण प्रस्तुत करने की कोशिश की गई है। इस सम्बंध में लेखों के बारे में अन्य विशेषज्ञों का सहयोग तथा अभिप्राय भी लिया गया है, परंतु फिर भी किसी सीमांत समूहों के अनुभव के बारे में हमारी समझ तथा सूचना की सीमा के कारण कोई त्रुटि रह गई हो, तो उस ओर ध्यान दिलाने का हमारा आग्रह है। पुस्तिका में शामिल मुद्दों, भाषा, प्रस्तुति और समाविष्ट नहीं किए गए मुद्दों के बारे में भी आपके सुझाव और प्रतिभाव आमंत्रित हैं।

दीपा सोनपाल
उन्नति - विकास शिक्षण संगठन

तृप्ति शाह
सहियर (स्त्री संगठन)

पुस्तिका श्रृंखला का उपयोग

यह पुस्तिका श्रृंखला महिलाओं तथा विकास के मुद्दों पर काम करने वाले स्थानीय कार्यकर्ताओं की जरूरतों को ध्यान में रख कर तैयार की गई है। स्थानीय कार्यकर्ताओं के लिए, नारी आंदोलन पर अपनी समझ विकसित करने के अलावा इस समझ को व्यापक रूप से समुदाय तक ले जाने के लिए सहायक साहित्य की जरूरत पड़ती है। इन दोनों जरूरतों को ध्यान में रख कर यथासंभव सरल भाषा में ये पुस्तिकाएं तैयार की गई हैं। पुस्तिकाओं के लेख के अलावा कुछ मुद्दों पर अतिरिक्त पठन और समाविष्ट मुद्दों पर अधिक जानकारी देने वाली पुस्तकों की सूची का भी समावेश किया गया है।

इस पुस्तिका को इस तरह तैयार किया गया है कि पुस्तिकाओं को पढ़ने के बाद कार्यकर्ता अपने कार्यक्षेत्र के लोक-समुदाय में इस विषय पर चर्चा कर सकें। नारी आंदोलन से जुड़ी घटनाओं को महिला समूह की बैठकों में होने वाली चर्चा के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। इसे इस तरह से विभाजित किया गया है कि इसके हर भाग को बैठक में एक से डेढ़ घंटे में पढ़ा जा सके। मुद्दे के अनुरूप गीत, काव्य आदि को शामिल किया गया है ताकि इसे पढ़ना व समझना रोचक हो।

कार्यकर्ताओं की व्यापक समझ बने इसके लिए श्रृंखला की चारों पुस्तिकाओं को सम्पूर्ण रूप से पढ़ना जरूरी है। कार्यकर्ता स्थानीय समूहों की परिस्थिति के अनुरूप आंदोलन की घटनाओं का चयन करते हुए उन्हें प्रस्तुत करे। हालांकि, इस श्रृंखला की प्रथम पुस्तिका में बुनियादी विचार प्रस्तुत किये गए हैं। अतः इसे प्रत्येक समूह के लिए सम्पूर्ण रूप से पढ़ा या प्रस्तुत किया जा सकता है। श्रृंखला की अन्य पुस्तिकाओं का उपयोग, कार्यकर्ता स्थानीय समूह के स्वरूप व जरूरत के अनुसार कर सकते हैं।

हर प्रस्तुति के बाद समूह के सदस्यों के साथ चर्चा करना आवश्यक है। पुस्तिका में दिए गए उदाहरणों के अलावा, स्थानीय स्तर पर अधिक प्रचलित उदाहरण या गीतों का प्रयोग किया जा सकता है। चर्चा से निकल कर आए महत्वपूर्ण मुद्दों, उदाहरणों, गीतों आदि को प्रकाशक को भेजने का आग्रह है, जिससे भविष्य में उन्हें शामिल किया जा सके।

समूह में पुस्तिका पठन की प्रभावी प्रस्तुति हेतु कार्यकर्ताओं के लिए सुझावः

पुस्तिका में सात मुख्य पात्र हैं। प्रत्येक पात्र के चारित्रिक गुणों को समझकर उसके अनुरूप संवाद बोलने के लिए पात्रों के संक्षिप्त परिचय नीचे दिये जा रहे हैंः

एकताः महिला समूह की अग्रणी कार्यकर्त्री है। शिक्षा, पठन और संघर्षो के अनुभव द्वारा महिला मुद्दों पर गहरी समझ है। महिला समूह की समझ बढ़ाने की भूमिका निभा रही है।

शकरीः 40-45 वर्ष की सक्षम महिला है। हिंसा के कारण पति से तलाक लेकर दो संतानों को अपने बलबूते पर लालन-पालन कर रही है। अधिक पढ़ी-लिखी नहीं है परन्तु पितृसत्ता और जाति प्रथा का सामना करने के अपने अनुभवों से समाज व्यवस्था के बारे में उसकी समझ बनी है। अपनी हिम्मत और सूझबूझ से सवाल कर सकती है।

कमलाः 20-22 वर्ष की कॉलेज में पढ़ाई करने वाली युवती है। वह अपने माता-पिता, दादा-दादी के साथ रहती है। वह भेदभाव व अन्याय सहन नही कर पाती। नई बातें जानने व स्वीकारने को उत्सुक है।

रेशमाः कमला की सहेली और हम उम्र है। उसके साथ ही पढ़ती है। सरल और उत्साही है।

आशाः 30-35 वर्ष की नौकरीपेशा शिक्षित महिला है। वैवाहिक जीवन में पति के संदेह और मानसिक त्रास से जूझ रही है।

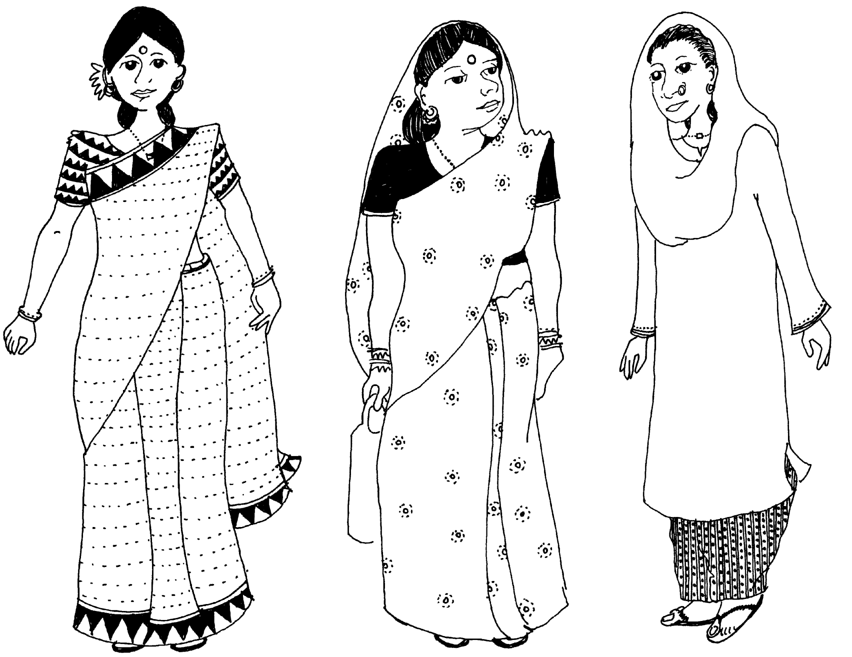

नीरु: 40-50 वर्ष की प्रौढ़ महिला है। गृहिणी है। परंपरागत वातावरण में पली-बढ़ी है। समाज में प्रचलित रीति-रिवाज, परंपराओं पर विश्वास रखने के साथ-साथ नई बातें भी सुनने को तैयार है।

फरजाना: 30-35 वर्ष की महिला है। गृहिणी है। परम्परागत वातावरण में पली-बढ़ी है। लेकिन नई बात समझने को तैयार है।

- यदि अलग-अलग कार्यकर्ता इन पात्रों के संवाद प्रस्तुत करें, तो बहुत अच्छा होगा। लेकिन यह संभव न हो, तो एक या उससे अधिक कार्यकर्ता प्रस्तुति कर सकते हैं।
- यदि समूह में प्रभावी रूप से पढ़ने वाले सदस्य हों, तो कुछ पात्रों के संवाद समूह के सदस्यों को पढ़ने को कहा जा सकता है।
- जिस भाग को पढ़ना हो, उसे कार्यकर्ता पहले से पढ़ कर समझ लें।
- अधिकांशतः सरल भाषा और शब्दों का प्रयोग किया गया है, परंतु इसके बावजूद कोई शब्द नया या कठिन लगे तो उसका अर्थ और स्पष्ट उच्चारण पहले से मालूम कर लें।
- जहां जरूरी लगे, वहां पुस्तिका में दिए उदाहरणों-गीतों के बदले स्थानीय स्तर पर अधिक प्रभावी उदाहरण और गीत उपलब्ध हों तो उन्हें ढूंढ कर बैठक से पहले तैयार रखें।

अंग्रेजी शासनः 1857 के विप्लव में दलित, आदिवासी स्त्रियां

देश विदेश की स्त्रियों के संघर्ष का इतिहास हमारी प्रेरणा है

फरजाना: एकता बहन, आज हम भारत की महिलाओं के आंदोलन की बात करने वाले है परंतु नीरू बहन और शकरी बहन तो अभी तक आई नहीं हैं।

कमला: हम उनका थोड़ा इंतजार करते हैं।

रेशमा: हां, कोई खास कारण नहीं होता तो वे समय से आ गई होतीं। (इतने में नीरू बहन और शकरी बहन आती हैं। दोनों गुस्से में हैं)

नीरू: (अपने गुस्से को नियंत्रित करती हुई कहती हैं) ये परिवार एवं जाति-समाज के लोग...

आशा: अरे, नीरू बहन आज आप परिवार और जात-पांत पर गुस्सा कर रही हो। यह तो अचरज़ की बात है। परंतु शकरी बहन की आंखें सूजी हुई क्यों हैं?

नीरू: आपको क्या बताऊँ, मैं काम निपटाकर तैयार हो ही रही थी कि इतनी देर में शकरी का लड़का दौड़ता हुआ मुझे बुलाने आया। कहा कि, मासी जल्दी चलो मेरे ताऊजी आए हैं। बहुत बोलचाल हो गई और मां आपको बुला रही है। मैंने शकरी के घर जाकर देखा तो लगा कि महाभारत हो रहा है।

शकरी: बहनों, आज सात वर्ष से मैंने बच्चों को अकेले पाला है। कोई देखने भी नहीं आया कि हम जीते हैं कि मर गए। आज, अचानक मेरे बड़े जेठ जाति के दो लोगों को लेकर आए और कहने लगे कि मेरी हंसा की सगाई तय हो गई है। घर-वर सब ठीक है एवं अगले हफ्ते वे सगाई करने आएंगे। यह सुनकर मैं गुस्सा हो गई और हंसा रोने लगी।

फरजानााः अरे यह क्या बात हुई? लड़की तुम्हारी है और सगाई इन लोगों ने कैसे तय कर दी?

शकरीः मैंने ऐसा ही कहा तो वहीं पर धमकाने लगे कि अलग हो गए तो क्या हुआ। लड़की के विवाह की चिंता तो हमें ही करनी होगी, हमारा यह हक थोड़े चला जाएगा, ये बच्चे तो हमारा ही खून है।

कमलाः अरे जनम तो शकरी बहन ने अपने खून मांस में से दिया था, पाला भी इसीने, तो उनका खून कैसे हो गया?

शकरीः मैंने कहा, अभी तो लड़की छोटी है और पढ़ती है। मुझे इसको पढ़ाना है। तो कहा कि "अपनी जात में लड़के भी ज्यादा नहीं पढ़ते तो लड़की को पढ़ाकर क्या करना है?"

नीरूः मैंने तो उनको सुना दिया कि लड़के और लड़की में कोई खास फर्क नहीं होता। भगवान ने लड़की व लड़के को एकसा दिमाग दिया है। जब भगवान ने ही फर्क नहीं किया तो आप फर्क करने वाले कौन हैं? हंसा को भी पढ़ लिख कर आगे बढ़ने का हक है।

सबः वाह नीरू बहन वाह! (ताली बजाकर उसे शाबासी दी)।

शकरीः हां, आज यदि नीरू बहन का साथ नहीं मिला होता तो अपने रिश्तेदारों के साथ लड़ने में मैं अकेली पड़ जाती। अभी तो हंसा

को नीरू बहन के घर पर उसकी लड़की के पास छोड़कर आई हूं जिससे उसका मन हलका हो जाए।

एकता: शाबास नीरू बहन। शकरी बहन, आपने भी खूब हिम्मत की। हम सब आपके साथ हैं। लेकिन मुझे खुशी तो इस बात की है कि पहले चरण में हमने जो चर्चा की थी वह वास्तव में आप सबके गले उतर गई।

फरजाना: हां, हम सबको यह ठीक से समझ आ गया है कि ईश्वर, अल्लाह या प्रकृति ने स्त्री-पुरुष को समान ही बनाया है। केवल प्रजननतंत्र मैं ही फर्क किया है, फिर हम क्यों निम्नतर रहें! आज हमारी आधी जिंदगी तो बीत गई परंतु समाज हमारी बेटीओं की जिंदगी नहीं बिगाड़े उसके लिए तो लड़ ही लेंगे।

आशा: सच बात है, हमने पहले भाग में देखा था कि समाज ने किस तरह स्त्री-पुरुष के बीच गुण, काम और फिर अधिकारों में फर्क किया और पितृसत्तात्मक व्यवस्था से उसे स्थापित किया।

कमला: हमने यह भी देखा कि किस तरह प्राचीन काल में गार्गी, मैत्रेयी, सीता या द्रोपदी जैसी स्त्रियों ने अन्याय का विरोध किया था।

शकरी: हमने समझा कि मनु महाराज ने किस तरह पुरुषों की सत्ता एवं जात-पांत के भेदभाव को मिलाकर निचली जातियों के लोगों एवं स्त्रियों को नीचा दिखाया एवं पढ़ने का अधिकार भी नहीं दिया।

रेशमा: यह बात समझी कि धर्म के नाम पर होने वाले ऊँच-नीच के भेदभाव एवं अंधश्रद्धा के खिलाफ चुनौति के रूप में किस तरह बौद्ध धर्म एवं इस्लाम की शुरूआत हुई थी।

नीरू: मीराबाई एवं उनकी जैसी अन्य...

एकता: अक्का महादेवी, जानबाई, लालदे, गंगासती

नीरू: हां, इन सभी भक्त स्त्रियों ने भक्ति युग में जाति एवं कुल की मर्यादाओं के विरुद्ध आवाज उठाई थी यह बात भी सुनी थी।

शकरी: तो फिर एकता बहन, इन सभी बातों से हमने कुछ नहीं सीखा हो तो पत्थर पर पानी डालना ही हुआ न?

फरजाना: सच्ची बात, अपने देश की ही नहीं विदेश की बहनों से भी हमने कितना कुछ सीखा है!

एकता: ठीक है। दूसरे भाग में हमने स्त्री समानता एवं मताधिकार के लिए दुनिया के देशों में हुए संघर्ष के बारे में जाना। आओ, उन बातों को भी याद करें।

कमलाः दूसरे भाग में सबसे पहले तो हमने यह देखा कि किस तरह यूरोप के देशों में नवजागरण युग और औद्योगिक क्रांति के साथ-साथ सामंतवादी व्यवस्था से पूंजीवादी व्यवस्था का विकास हुआ।

आशाः पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध मजदूरों ने यूनियन बनाई एवं मताधिकार के लिए भी संघर्ष किया।

रेशमाः जब हमने आशा के पति से इस बारे में बात की तभी उसे समज में आया कि लोकतंत्र और मजदूर यूनियन के विचार भी पश्चिमी देशों से ही आए हैं।

कमलाः हमने उन्हें यह भी बताया कि इंगलैंड में मतदान के अधिकार के लिए भी आम लोगों, मजदूरों और स्त्रियों को किस तरह संघर्ष करना पड़ा था।

आशाः अरे, कितने उदाहरण और दलीलें देने पर ही उनकी आंखें खुल सकी थी।

एकताः बहुत अच्छा। इसके बाद हमने फ्रांस की क्रांति में स्त्रियों की सहभागिता की चर्चा की थी।

नीरूः हाँ। उसमें तो उस बहन को फांसी पर ही चढ़ा दिया था न!

एकताः बिल्कुल सही। स्त्रियों के अधिकार का घोषणापत्र लिखने वाली ओलम्पी डी. गोजीस को मृत्युदंड दिया गया था।

फरजानाः हमने समाज बदलने की बातें करने वाले कई विचारकों के विचार जाने थे।

रेशमाः नारीवाद का पहला घोषणा पत्र देने वाली मेरी वॉल स्टोन क्राफ्ट, सहकार का सिद्धांत देने वाले राबर्ट ओवन एवं उनकी साथी अन्ना व्हीलर की बात समझी। कार्ल मार्क्स एवं महिला दिवस की शुरूआत करने वाली कपड़े-सूत की मिलों की मजदूरों एवं क्लेरा जेटकीन की बात भी सुनी थी।

आशाः अरे इससे पहले तो अमेरिका में गुलामों की मुक्ति एवं स्त्रियों के अधिकार के लिए लड़ने वाली बहनों के बारे में बात की थी उनका नाम...

एकताः फेनी राइट, एलिजाबेथ स्टेनटोन एवं ल्युक्रेशिया मोट।

शकरीः रूस में रोटी व शांति के लिए स्त्री मजदूरों द्वारा महिला दिवस पर शुरू किए आंदोलन में से क्रांति शुरुआत होने की बात भी जानी थी।

नीरू: इन सभी बहनों की बातें जानकर एक बात समझ में आई कि दुनिया बदलने के सभी संघर्षों में स्त्रियों ने काफी अग्रणी भूमिका निभाई है।

एकता: बहुत बढ़िया। संक्षेप में कहें तो... हमने देखा कि भिन्न-भिन्न देशों की महिलाओं के मताधिकार, गुलामी उन्मूलन या फिर काम करने की बेहतर परिस्थिति के लिए, संघर्षों के जरिये 19वीं सदी में पूरे विश्व में स्त्रियों के मुद्दे केन्द्रीय स्थान में आए थे।

रेशमा: लेकिन जब दुनिया भर की स्त्रियां यह संघर्ष कर रही थीं तब भारत की स्त्रियां क्या कर रही थीं?

एकता: पूरी दुनिया की तरह भारत में भी 19वीं सदी में सुधार आंदोलनों में स्त्रियों के मुद्दे उभर कर सामने आये और महत्त्वपूर्ण बने।

शकरी: ऐसा किस तरह से हुआ, उसके बारे में हमें बताओ ना!

एकता: पहले मैं भारत की परिस्थिति के बारे में बताऊंगी, क्योंकि जैसा हम जानते है, स्त्रियों के मुद्दे सम्पूर्ण समाज की परिस्थिति के साथ जुड़े हुए हैं।

19वीं शताब्दी का भारत

18-19वीं सदी में भारत पर अंग्रेजों का राज था। उस समय यूरोप के बाजार में भारत के गरम मसालों, कपड़ों, हस्तकला की वस्तुओं आदि की बहुत मांग रहती थी। अतः पहले तो अंग्रेज ईस्ट इंडिया कंपनी के नाम से भारत में व्यापार करने आये और बाद में वे राजा बन बैठे।

फरजाना: तो क्या उस समय भारत की जनता ने अंग्रेजों का विरोध नहीं किया था?

कमला: किया ही था ना। क्या आपने 1857 के विद्रोह के बारे में नहीं सुना?

आशा: विद्रोह या भारत की स्वतंत्रता का पहला संग्राम?

एकता: कई अंग्रेज लेखक उसे सिपाहियों का विद्रोह कहते हैं, तो कई राष्ट्रवादी लेखक उसे भारत की स्वतंत्रता के लिए किया गया प्रथम संग्राम कहते हैं। लेकिन सच पूछो तो अंग्रेजों के आने से पहले उस अखंड देश का अस्तित्व था ही नहीं जिसे आज हम भारत के नाम से पुकारते हैं।

नीरू: क्या मतलब?

एकता: मतलब यह है, कि अंग्रेजों के यहां आने से पहले, जिसे आज हम भारत के नाम से जानते हैं वह भूखंड अनेक अलग-अलग राजों-रजवाड़ों और नवाबों में बंटा हुआ था। 17वीं सदी के अंत तक दिल्ली के शक्तिशाली मुगल साम्राज्य का बहुत बड़े क्षेत्र में राज था। इन राज्यों में व्यापार करने के लिए अंग्रेज कंपनी को मुगल सम्राट या उनके सूबेदारों से विनती करनी पड़ती थी। परंतु 18वीं सदी की शुरूआत में मुगल साम्राज्य का पतन हुआ और फिर से सारे प्रदेश अलग-अलग राजों-रजवाड़ों में बंट गये। ये सारे रजवाड़े अपने-अपने राज्यों के विस्तार के लिए एक-दूसरे से लगातार लड़ाई और युद्ध करते रहते थे। इस परिस्थिति का लाभ उठाकर अंग्रेजों ने साम-दाम-दंड-भेद की नीतियों से अधिकांश राज्यों पर अपनी सत्ता जमा ली।

रेशमा: सही बात, हमने सुना है कि कई राजा, नवाब, जागीरदार अपना राज बचाने के लिए 1857 के विद्रोह में शामिल हुए थे। उनमें राष्ट्रप्रेम और एकता का अभाव था, इसी कारण यह विद्रोह सफल नहीं हो सका।

नीरू: तो क्या अंग्रेजों के राज से साधारण लोगों पर कोई असर नहीं हुआ? वे उस विद्रोह में शामिल हुए थे या नहीं?

फरजाना: और औरतें.... क्या उसमें औरतें भी शामिल हुई थीं?

कमला: स्त्रियां तो जुड़ी ही थीं। क्या तुमने झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की बात नहीं सुनी? और वह विख्यात कविता... 'खूब लड़ी मरदानी, वह तो झांसी वाली रानी थी...'

एकता: साधारण लोग और स्त्रियां, दोनों उसमें जुड़े थे। कारण यह था कि अंग्रेजों की नीतियों का सबसे बुरा असर तो कारीगरों, किसानों और आदिवासियों पर ही पड़ा था।

शकरी: वह कैसे?

एकता: हमने पहले जो चर्चा की है इससे तुम जानती हो कि इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हुई थी। औद्योगिक क्रांति के कारण इंग्लैंड में कारखाना पद्धति से बहुत उत्पादन होने लगा था। अतः अब उनको भारत में बनी हुई वस्तुओं में नहीं, वरन इंग्लैंड के कारखानों के लिए कच्चे माल की जरूरत पड़ने लगी थी और

उन कारखानों की बनी हुई वस्तुओं को बेचने के लिए बाज़ार की जरूरत थी। अतः उन्होंने सस्ते भाव पर कच्चा माल खरीदने और तैयार माल भारत के बाजारों में बेचने के लिए भारत के अर्थतंत्र को, किसानों, कारीगर वर्ग को दबाकर, निचोड़कर चौपट कर डाला।

आशा: अंग्रेजों ने ऐसा किस तरह से किया?

एकता: अंग्रेजों ने भारत के कारीगरों पर ऐसा कर लगा दिया जिससे उनका बनाया हुआ माल महंगा और इंग्लैंड से आया हुआ माल सस्ता पड़े। इस तरह भारत के कारीगर बेकार हो गए।

फरजाना: और किसान?

एकता: जमीन पर मालगुजारी उगाहने की ऐसी पद्धति लागू की जिसमें कर उगाहने वाले जमीन के मालिक बन गये और जमीन जोतने वाले किसान कर देते-देते कंगाल हो गये। आदिवासियों का जंगलों पर हक और स्वतंत्रता छिन गई, इसीलिए 1857 के विद्रोह से पहले भी अनेक आदिवासी इलाकों में हुए विद्रोहों में उन्होंने अंग्रेजों का जबर्दस्त मुकाबला किया था।

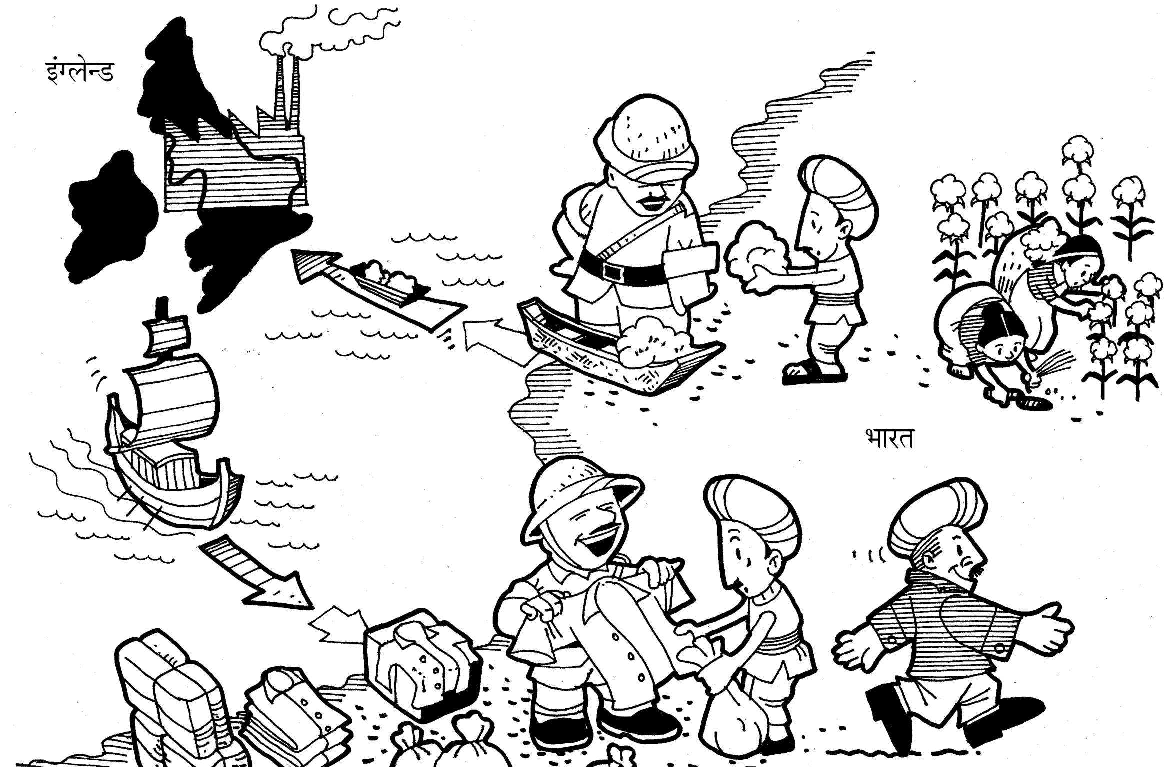

रेशमाः पर यह बात तो हम जानते ही नहीं।

एकताः क्योंकि जैसा हमने पहले देखा था, इतिहास में कई बातों, घटनाओं और व्यक्तियों को अधिक महत्त्व दिया गया है, जबकि ज्यादातर साधारण लोगों और महिलाओं की बातें बाहर नहीं आईं। जैसे रानी लक्ष्मीबाई का नाम घर-घर में विख्यात हुआ, पर उसका वेश धारण करके अंग्रेजों को चुनौती देने वाली झलकारी बाई के बारे में शायद ही कोई जानता होगा।

कमलाः झलकारी? क्या वह भी कोई रानी थी?

एकताः नहीं। झलकारी एक दलित स्त्री थी। दलित साहित्य में उसके बारे में अनेक कविताएं, उपन्यास और जीवन चरित्र भी लिखे हुए हैं।

झलकारी बाई

झलकारी बाई का परंपरागत व्यवसाय बुनाई करना था। उसके पति झांसी की फौज में सैनिक थे। स्वभाव से बहादुर झलकारी बाई ने पति से शस्त्र चलाने सीखे थे। उसके शरीर का गठन और चेहरा-मोहरा रानी लक्ष्मीबाई से मिलता-जुलता था। उन दोनों के बीच बहनापे का रिश्ता बन चुका था। जब लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के खिलाफ युद्ध करने निकली तब नारी-सेना 'दुर्गा-दल' की अगुवाई झलकारी बाई ने की थी। युद्ध के अंतिम चरण में झलकारी बाई ने लक्ष्मीबाई का वेश धारण कर लिया था, ताकि लक्ष्मीबाई अंग्रेजों के घेरे में से सही सलामत बाहर निकल सकें। इसी बीच युद्ध में अपने पति की मौत का समाचार मिलते ही वे घायल शेरनी की तरह युद्ध क्षेत्र में कूद पड़ी और अनेक सैनिकों को मौत के घाट उतार दिया। उन्होंने लंबे समय तक लक्ष्मीबाई के वेश में अंग्रेज़ों को गुमराह किये रखा, पर अंत में वीरगति को प्राप्त हुईं।

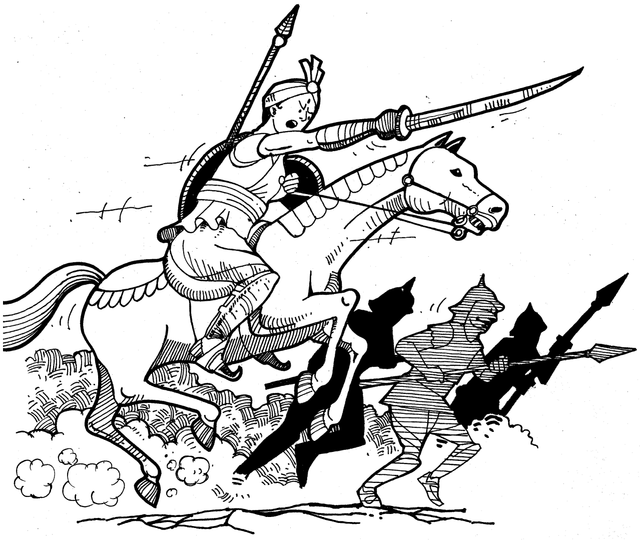

शकरीः वाह, झलकारी बाई! आपको लाखों-लाख सलाम! एकता बहन, अगर आप झलकारी बाई का कोई गीत जानती हों तो हमें सुनाओ ना!

एकता: तो सुनो-

खूब लड़ी झलकारी, तू तो, तेरी एक जवानी थी।
दूर फिरंगी को करने में, वीरों में मरदानी थी।
हर बोलों के मुंह से हमने तेरी सुनी कहानी थी।
रानी की तू साथिन बन कर, झांसी फतह करानी थी।
दातिया फाटक रोंद फिरंगी, आगे बढ़ी झलकारी थी।
काली रूप भयंकर गर्जन मानो कड़क दामिनी थी।
कोई फिरंगी आंख उठाये, धड़ से शीश उतारी थी।
हर बोलों के मुंह से सुने हम, रूप चंड़िका पानी थी।
खूब लड़ी झलकारी, तू तो, तेरी एक जवानी थी।

फरजाना: हमने सुना है कि 1857 के विद्रोह में हिन्दू-मुसलमान सिपाही और साधारण जनता सब साथ मिलकर लड़े थे। तो क्या मुसलमान औरतों ने भी इस संग्राम में भाग लिया था?

एकता: बिल्कुल। 1857 के विद्रोह में हिन्दू-मुसलमान सिपाही और साधारण जनता सब साथ मिलकर लड़े थे। संग्राम के अगुवाओं में उनके मुख्य नेता नाना साहेब पेशवा, तात्या टोपे, राव तुलाराम के साथ रवान बहादुर खान का नाम भी लिया जाता है और इस संग्राम का नेतृत्व सबने मिलकर दिल्ली के मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर को सौंपा था। जब संग्राम को कुचल डाला गया, तब अंग्रेज़ों ने बहादुर शाह जफर को देश निकाले की सजा देकर रंगून भेज दिया था। इसी तरह अगर महिलाओं की बात करें तो अवध के नवाब वाजिद अली शाह की बेगम हज़रत महल और उनकी साथी उदा देवी के नाम हम कभी नहीं भूल सकते।

बेगम हज़रत महल और उदा देवी

एकता: अंग्रेज़ों ने अवध के नवाब को देश निकाला दिया, पर बेगम हज़रत महल ने उनसे समझौता नहीं किया। उसकी अगुवाई में महिलाओं की फौज ने आठ महीनों तक अंग्रेजों को उलझाए रखा। इस फौज के बारे में अंग्रेज़ इतिहासकारों ने जो बातें लिखी हैं वे आश्चर्यजनक हैं। कहा जाता है कि इस सेना में एमेज़न की हब्शी महिलाएं भी जुड़ी हुई थीं। लखनऊ के एक गांव में जन्मी और जागरानी के नाम से जानी जाने वाली उदा देवी ने इस सेना में एक लड़ाकू महिला टुकड़ी का नेतृत्व संभाला था। जब अंग्रेजों

ने लखनऊ में सिकंदर बाग पर हमला किया, तब उनको इन दलित स्त्रियों की फौज का सामना करना पड़ा था। उदा देवी ने पीपल के पेड़ पर चढ़ कर लगभग 36 अंग्रेज सैनिकों को गोली का निशाना बनाया था। अंग्रेज़ इतिहासकार लिखते हैं कि जब तक उनकी मृत्यु नहीं हुई, तब तक अंग्रेजों को पता ही नहीं चला कि वे स्त्रियों की फौज से लड़ रहे थे। जब उदा देवी गोली का शिकार होकर वीर गति को प्राप्त हुईं, तब उनकी वीरता से प्रभावित अंग्रेज़ अफसर केम्पबेल अपना टोप उतार कर उन्हें सलामी दिये बगैर रह न सके।

ऐसी अनेक आम औरतो के बलिदान की घटनाएं अपने इतिहास का हिस्सा है। कानपुर की अजीजुन निशा नामक गणिका की घटना के द्वारा मैं आपको गणिका के रूप में गाने-बजाने का काम करने वाली स्त्रियों के बलिदान का भी एक उदाहरण बताऊंगी।

नीरू: उन वेश्याओं के दिल में भी क्या देश प्रेम की ज्वाला थी?

एकता: हमारे समाज में 'वेश्या' शब्द एक गाली के बतौर प्रयुक्त होता है। अपने शरीर को बेचने वाली स्त्रियों को नैतिकता की दृष्टि से बहुत निम्न स्थान दिया जाता है। लेकिन ऐसा एक मत है कि इसे भी एक व्यवसाय के रूप में देखना चाहिए। इस बारे में हम फिर कभी विस्तार से चर्चा करेंगी। वैसे गणिका याने गायन, वादन, नृत्य का व्यवसाय करने वाली स्त्रियां वेश्या व्यवसाय में जुड़ी महिलाओं से अलग थीं। संस्कृति, संगीत, नृत्य की विरासत को सहेजे रखने में उनकी भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। फिर अन्य स्त्रियों की भांति मान-मर्यादा में रहने का दायित्व न होने के कारण वे राजनीति और देश के वातावरण से परिचित थीं। अंग्रेज़ों ने एक ऐसा कानून पारित किया जिससे उनके व्यवसाय और स्वतंत्रता पर अनेक नियंत्रण लग गये थे। इस नये कानून के द्वारा गणिकाओं को वेश्या का दर्जा देकर उनकी अवहेलना की गई। इससे वे सब चिढ़ी हुई थीं। कानपुर की अजीजुन निशा कानपुर विद्रोह में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हुए शहीद हुई थीं।

शकरी: आपने आदिवासियों की बात तो बताई ही नहीं।

एकता: अरे, आदिवासियों ने तो 1857 के संग्राम के शुरू होने से पहले ही अनेकों बार अंग्रेज़ों के खिलाफ बगावत की थी। अनेक

आदिवासी क्षेत्रों में अपनी हुकूमत जमाने के लिए अंग्रेज़ों को भारी क्षति झेलनी पड़ी थी।

आशा: लेकिन अंग्रेज़ों के आने से आदिवासियों की जिंदगी में किस तरह फर्क पड़ा?

अंग्रेज शासन और आदिवासी

एकता: अंग्रेजों के द्वारा शुरू की गई नई आर्थिक व्यवस्था ने विविध अंचलों में रहने वाले आदिवासियों के जीवन को तहस-नहस कर डाला था। आदिवासी सामूहिक जीवन जीते थे। जंगल में खेती करते, शिकार करते और वनों में उत्पन्न होने वाली वस्तुओं पर निर्भर रहते थे। तेरा-मेरा या स्वामित्व का भाव उनमें नहीं था। पहाड़ की सूखी जमीन पर आज यहां खेती करते तो कुछ वर्षों बाद दूसरी जगह पर चले जाते। यह सोचते तक न थे कि ज़मीन पर किसी का मालिकाना अधिकार भी होता है। अंग्रेज़ों ने ज़मीन का कर वसूल करने के लिए कइयों को ज़मीन का मालिक बना दिया और दूसरों को उनका काश्तकार बना दिया। ऐसे ज़मींदार मालिक बनने के साथ-साथ साहूकार भी बन गए। अंग्रेज़ों को कर चुकाने के लिए वे आदिवासियों का शोषण करने लगे। आदिवासियों की ज़मीन छीनी जाने लगी। अंग्रेज़ों ने जंगल के कानून में परिवर्तन किया और जंगल को सरकारी मिल्कियत

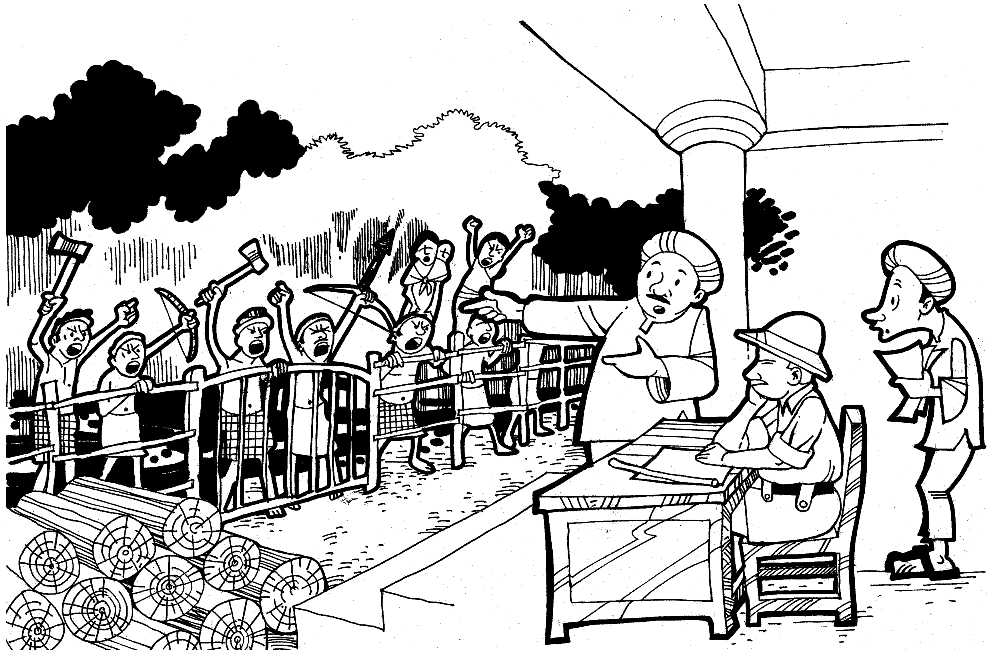

घोषित कर दिया। उसमें से कुछ भी लेने व खेती करने की मनाही कर दी। इस प्रकार जंगल के मूल वाशिन्दों को उनके अपने जंगल में मानो चोर और गुनहगार घोषित कर दिया।

नीरू: तो क्या उन्होंने आदिवासियों को जंगल से बाहर निकाल दिया?

एकता: नहीं। आदिवासियों को जंगल से निकाल देते, तो जंगल की लकड़ी काटने और सड़क तक पहुंचाने की भारी मजदूरी वाला काम कौन करता? अंग्रेज़ों को लंबी-लंबी रेलवे लाइनें बिछाने के लिए बहुत लकड़ी चाहिए थी। वन में उत्पन्न होने वाली अन्य वस्तुओं को इकट्ठा करने के लिए भी उन्हें मज़दूरों की जरूरत थी। अतः अंग्रेजों ने आदिवासियों को जंगल में रहने के बदले में मुफ्त मज़दूरी के लिए मजबूर कर दिया। अंग्रेजों, उनके द्वारा नियुक्त जमींदारों, साहूकारों और व्यापारियों के शोषण से पीड़ित आदिवासी बार-बार विद्रोह करते थे।

रेशमा: ऐसे किसी विद्रोह के बारे में हमें बताइये ना!

एकता: संथाल के हुल आदिवासियों के संघर्ष के बारे में मैं तुमको बताती हूं। कहा जाता है कि आदिवासियों के शोषण और आदिवासी स्त्रियों पर किये गए बलात्कार, अत्याचार के प्रत्युत्तर स्वरूप संघर्ष में अपने आत्म गौरव के लिए, 10,000 से भी अधिक आदिवासी स्त्री-पुरुषों ने बलिदान दिया था। सिद्धो कानू और चांद भैरव उनके नेता थे। उनके साथ फूलो और जानो नाम की दो बहनों की वीरता की गाथाएं संथाल लोक गीतों में आज भी गाई जाती हैं। जुलाई 1855 में विद्रोही संथाल आदिवासियों ने वीरभूम जिले के आधे हिस्से पर अपना अधिकार जमा लिया था। पुलिस, जमींदार और साहूकार सब साथ मिलकर आदिवासियों के खिलाफ लड़े, पर उन लोगों ने संयुक्त फौज को हरा दिया। इसके बावजूद अंग्रेजों ने जवाबी हमले जारी रखे। एक रात फूलो और जानों ने उनकी छावनी में जाकर 21 सिपाहियों को मौत के घाट उतार दाला।

फरजाना: यानी यह तो 1857 का संग्राम शुरू होने से पहले की बात है।

एकता: हां। 1857 में गुजरात में पंचमहाल, महि और रेवा नदी के तटवर्ती आदिवासियों ने अंग्रेजों को कई दिनों तक उलझाया था। आदिवासियों का संघर्ष तो उसके बाद भी चलता ही रहा। 1895 में छोटा नागपुर (बिहार, अब झारखण्ड) अंचल में बिरसा मुंडा

की अगुवाई में उरगुलान नामक प्रसिद्ध विद्रोह हुआ था। वे सिर्फ अंग्रेज़ो के सामने ही नहीं, वरन् 'दिकुओं' यानी बाहर के लोगों, जिनमें मिशनरी, साहूकार, हिंदू-जमींदार शामिल थे, और जिन्होंने उनके परंपरागत अधिकारों पर कब्ज़ा कर लिया था, उन सबके खिलाफ अपने जल, जंगल, ज़मीन पर परंपरागत हक बनाये रखने के लिए आदिवासी स्त्री-पुरुषों ने कंधे से कंधा मिलाकर लड़ाई छेड़ी। इस संग्राम के एक महत्त्वपूर्ण नेता गया मुंडा और उसकी पत्नी माकी के बलिदान को आज भी सब याद करते हैं। अंग्रेज़ों ने गया मुंडा को फांसी पर लटकाया और उसकी पत्नी को सख्त कैद की सजा दी।

कमलाः मतलब यह कहा जा सकता है कि 1857 का संग्राम अंग्रेजों के द्वारा की गई नयी व्यवस्था के विरुद्ध सभी वर्गों, जातियों व धर्म के लोगों द्वारा व्यक्त विरोध का प्रतीक था?

एकताः सभी वर्ग नहीं वरन् बहुत सारे वर्ग, क्योंकि उस समय भारत में एक महत्त्वपूर्ण वर्ग ऐसा था, जिसने अंग्रेज़ी राज का समर्थन किया था।

आशाः ऐसा कौनसा वर्ग था?

अंग्रेजी शिक्षा और बुद्धिजीवी

एकताः अंग्रेजी शिक्षा पाकर अंग्रेजी प्रशासन में जुड़े प्रशासकों और बुद्धिजीवियों के कई समूहों ने अंग्रेजी शासन का स्वागत किया था।

रेशमाः हां, कवि दलपतराम की वह कविता याद आ रही है, जिसमें अंग्रेजी प्रशासन की प्रशंसा में लिखा था कि
'देख बेचारी बकरी का भी कोई न जाते पकड़े कान।
यह उपकार मान ईश्वर का, खुश हो अब तू हिंदुस्तान।।'
(मूल गुजराती से अनुवाद)

एकताः बहुसंख्यक बुद्धिजीवियों को लगता था कि एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ते रहने वाले राजाओं-रजवाड़ों की अराजक राजनीति के बजाय अंग्रेजी शासन की स्थिरता अधिक उचित है। फिर, अंग्रेजी शिक्षण की वजह से एक और दूरगामी फायदा भी हुआ।

शकरीः पर अंग्रेजों ने भारतीय जनता को अंग्रेजी-शिक्षण दिया ही क्यों?

एकता: क्योंकि 20 करोड़ की विशाल आबादी वाले देश में परदेश से आये मुट्ठी भर अंग्रेजों के लिए अकेले राज करना संभव नहीं था। अतः उन्होंने एक तरफ राजाओं और जमींदारों को अपने हाथ में लिया और दूसरी तरफ प्रशासन चलाने के लिए बुद्धिजीवी वर्ग हेतु अंग्रेजी की पढ़ाई शुरू की। अंग्रेजी की पढ़ाई के साथ-साथ भारत के बुद्धिजीवी पुरुष यूरोप के कई नये और प्रगतिशील विचारों से भी प्रभावित हुए। उस समय यूरोप में चर्चित 'उदारमत वाद,' 'व्यक्ति स्वातंत्र्य' और 'मानव मात्र के नैसर्गिक अधिकारों' की बातों के साथ-साथ महिलाओं के संघर्ष और महिलाओं के बारे में कई विचारकों के उदारमतवादी विचारों का भी उन पर गहरा प्रभाव पड़ा। अतः उन्होंने भारत में विद्यमान अंधविश्वास, कुरीतियों आदि के विरुद्ध सवाल खड़े करने शुरू किये।

रेशमा: क्या इसीलिए वह युग सुधारयुग कहलाता है?

नीरू: एकता बहन! आज मेरा जाने का समय हो गया। सुधार युग की चर्चा के लिए हम फिर मिलेंगी।

सबः ठीक है, आज की मीटिंग समाप्त कर दें।

महिलाओं के सवाल: सुधारवादी, पुनरुत्थानवादी, अंग्रेज और दलित - बहुजन समाज

फरजाना: एकता बहन! आज हम सुधार युग की चर्चा करेंगी, क्यों सही है ना?

एकता: हां, क्या तुम उस समय के किसी समाज सुधारक के बारे में जानती हो?

कमला: हां, हमने राजा राममोहन राय का नाम सुना है। उन्होंने सती-प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाई थी।

एकता: इनके अलावा ईश्वरचंद्र विद्यासागर, जस्टिस रानडे, कवि नर्मद, करसनदास मूलजी, बहेरामजी मालबारी आदि ने सती प्रथा, बाल विवाह, विधवाओं की दशा, नारी-शिक्षण, परदेस गमन पर प्रतिबंध आदि के संबंध में अभियान चलाये थे।

आशा: पर इन सुधारकों के द्वारा उठाये हुए अधिकांश मुद्दे स्त्रियों से संबंधित हैं, ऐसा क्यों?

एकता: क्योंकि उस समय समाज में स्त्रियां सबसे अधिक दबी-कुचली थीं। जब तक उनकी दशा न बदली जाए, तब तक समाज में कोई भी परिवर्तन संभव नहीं था। इसके अलावा अंग्रेजी पढ़े-लिखे इन सुशिक्षित पुरुषों को बाल विवाह वाली पत्नी का साथ बेमेल जैसा लगता था। अतः यदि स्त्रियों की परिस्थिति सुधरे, तभी वो सुशिक्षित पुरुषों को समझ सकने वाली योग्य पत्नी बन सकती थीं और उनके बच्चों की अच्छी माता बन सकती थीं।

रेशमा: मतलब यह हुआ कि उन लोगों को स्त्रियों के विकास और स्त्रियों के आगे बढ़ने में रुचि नहीं थी, वरन् पढ़ी-लिखी पत्नी और बच्चों को पढ़ी-लिखी माता मिले, इसमें अधिक रुचि थी।

नीरू: तुम लड़कियों की तो हर मामले में उल्टा देखने की आदत है।

एकता: रेशमा की बात एक तरह से सही है। लेकिन हमको यह भी नहीं भूलना चाहिए कि वे सुधारक भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से बंधे हुए थे और उन लोगों ने बहुत विरोध के बीच यह काम किया था। 19वीं सदी के रूढ़िवादी समाज ने इन सुधारकों पर अनेक प्रकार के जुल्म ढाये। रूढ़िवादी लोग सुधारकों के विरुद्ध मात्र प्रचार ही नहीं, वरन् हिंसक आक्रमण भी करते थे, उनको 'जाति बाहर' कर देते थे। इस तरह उन पर सारे हथियार आजमाते थे। इन सबके बीच उनके द्वारा छेड़े गये अभियान से स्त्रियों के लिए शिक्षण की शुरूआत हुई, सती-प्रथा के विरुद्ध कानून बना और भारत की कई स्त्रियों के लिए दुनिया को देखने की एक नयी खिड़की खुली। इसी दौरान कई अंग्रेज इतिहासकार व लेखक भी भारत की स्त्रियों की दयनीय स्थिति के बारे में लेख लिखने लगे।

शकरी: आप तो कहती थीं कि अंग्रेज भारत का शोषण करते थे, फिर भारत की स्त्रियों के प्रति इतनी उदार भावना दर्शाने की क्या वजह थी?

एकता: आपका प्रश्न सही है। कुछेक संवेदनशील अंग्रेजों को छोड़ दें तो अधिकांश अंग्रेजों ने स्त्रियों की समस्याएं इस वजह से नहीं उठाई थी कि उन्हें भारत की स्त्रियों के प्रति बहुत लगाव था, वरन वे साबित करना चाहते थे कि भारत की संस्कृति कितनी पिछड़ी हुई है। समाज में स्त्रियों की स्थिति कैसी है, इसके आधार पर उस देश की संस्कृति को आंका जाता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति को और भारतीयों को नीचा दिखाया और खुद का राज कायम रखने के लिए तर्क दिये कि 'देखो, भारत के लोग अपनी स्त्रियों के साथ कितना बुरा बर्ताव करते हैं... अतः भारतीयों को सुधारने के लिए, उनको अच्छे विचार देने के लिए, उन पर अंग्रेजों को राज करना जरूरी है।'

फरजाना: यह तो ठीक नहीं है।

कमला: ऐसे विचारों का तो विरोध करना चाहिये।

एकता: और विरोध हुआ भी! पर यह विरोध करने के लिए जिस विचारधारा का उपयोग किया गया उसके परिणामस्वरूप नारी समानता की लड़ाई पीछे धकेल दी गई।

रेशमा: वह कैसे?

एकता: अंग्रेजों की ऐसी नीति के जवाब में 19वीं सदी के अंतिम वर्षों में समाज सुधार आंदोलन में 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' धारा का जन्म हुआ।

इसके समर्थक विचारकों को पुनरुत्थानवादी कहते हैं। इन विचारकों ने राष्ट्र के प्रति अभिमान जगाने के लिए भारतीय संस्कृति के 'स्वर्ण युग' की खोज़ की। उन्होंने ऐसी दलील दी कि भारत की संस्कृति अत्यंत महान है और उसमें नारी का स्थान भी बहुत ऊंचा है। इस देश में तो नारी को देवी के रूप में पूजा जाता है। प्राचीन काल में, वैदिक काल में नारी का बहुत महत्त्व था, पर मध्य युग में विदेशियों के आक्रमण के समक्ष स्त्रियों की सुरक्षा बनाये रखने हेतु पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा आदि अस्तित्व में आये।

आशाः लेकिन हम तो आगे देख चुके हैं कि वैदिक काल में भी स्त्रियों को समान अधिकार प्राप्त नहीं थे। पुराणों और महाकाव्यों के समय में वर्ण-व्यवस्था और दास-दासी की गुलामी थी और मनुस्मृति में तो स्त्रियों और शूद्रों के प्रति भेदभाव को कानून ही बना दिया गया था। ये तमाम बातें तो मध्य युग से पहले की हैं।

एकताः हां, लेकिन इन तमाम तथ्यों को नज़रअंदाज किया गया। इतना ही नहीं, ऐसे तर्क भी दिये गए कि चाहे ये रिवाज गलत हों, पर इन तमाम रिवाजों के खिलाफ कानून बनाने का अधिकार विदेशी सरकार को नहीं है। पहले विदेशी सरकार को हटायेंगे, उसके बाद समाज में सुधार का काम हम अपने ढंग से करेंगे।

नीरू: अरे..., यह तो 'नाम स्त्रियों का और काम अपना' जैसी बात हुई।

फरजाना: मुझे तो वह कहावत याद आ रही है कि 'कुत्ता खींचे गांव की तरफ और सियार खींचे जंगल की तरफ'।

एकता: हां, उस समय शुरू हुई यह खींचातानी अब भी चल रही है। आज भी स्त्रियों के अधिकार की बात करें तो तुरंत सौ वर्ष पुरानी दलीलें फिर से सुनने को मिलती हैं।

रेशमा: लेकिन, उस समय इस बात को क्या कोई भी सुधारक नहीं समझ सका? और क्या उस समय कोई स्त्री-सुधारक नहीं थीं, जिन्होंने जाति प्रथा और पितृसत्ता को ललकारा हो?

एकता: उस समय कुछ ऐसे सुधारक पुरुष एवं स्त्रियां भी थे, जैसे, ज्योतीबा फूले, सावित्री बाई फूले, पंडिता रमाबाई, रूक्माबाई, ताराबाई शिंदे इत्यादि। लेकिन उच्च जाति के पुरुषों की दृष्टि से लिखे गए हमारे इतिहास में से उनके नाम भी मिटा दिये गये थे। उनमें से अनेक सुधारकों के कार्यों के संबंध में शोध करके अब नारीवादी अध्येता बहुत अधिक सूचनाएं सामने लाये हैं।

कमला: हमें इनके बारे में बताइये!

एकता: इनके बारे में बात करने से पहले उस समय की सामाजिक व्यवस्था को समझना पड़ेगा। तभी हम उनके काम के महत्त्व को समझ पायेंगे।

शकरी: ठीक है। हमें पहले उस समय की सामाजिक व्यवस्था के बारे में बताइये!

एकता: जैसा हम पहले जान चुके हैं कि अंग्रेजों के आने से पहले भारत कई छोटे-छोटे राजों-रजवाड़ों में बंटा हुआ था और हर रजवाड़े के अपने अलग-अलग नियम-कानून थे। हालांकि ग्रामीण जनता की जिंदगी अधिकांशतः पंचायत और जाति पंचायत द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार चला करती थी।

नीरू: पर रोजमर्रा के जीवन में जाति पंचायतें किस तरह असर डालते थी?

एकता: आपके मन में ऐसा प्रश्न उठना स्वाभाविक है, क्योंकि आज जाति और उनके पंचायत का महत्व बहुत सिमित हो चुका है। पर उस जमाने में ऐसा नहीं था। प्रत्येक जाति के साथ एक व्यवसाय अर्थात् काम जुड़ा हुआ था और संबंधित जाति के लोग

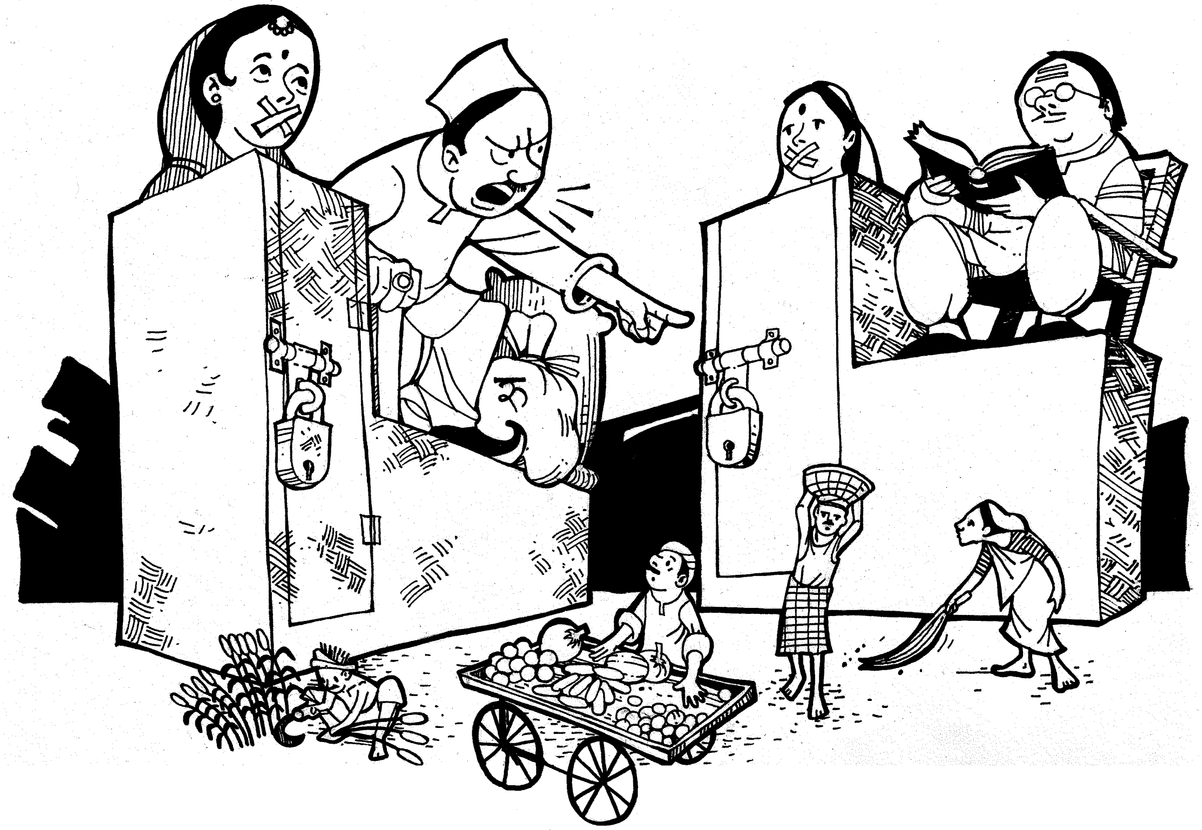

अपनी जाति के अनुसार ही काम या व्यवसाय कर सकते थे। किस जाति के लोग क्या पहनें, क्या खायें, क्या न खायें, किसके हाथ का भोजन खा सकते हैं, किसके हाथ का पानी नहीं पी सकते हैं और अपने बेटे-बेटी किस जाति या गोत्र में ब्याह सकते हैं, इसे लेकर सख्त नियम थे।

आशा: लेकिन अगर कोई नियम का पालन न करे तो?

एकता: तो जाति-पंच उसे 'जाति बाहर' कर देता था। उन्हें सामाजिक बहिष्कार झेलना पड़ता था। यह उस समय की सबसे भयंकर सजा थी, क्योंकि जीवन निर्वाह हेतु काम से लेकर रोजमर्रा के दैनिक कार्यों के अलावा जन्म, मरण, विवाह इत्यादि प्रसंग जाति के सहयोग के बिना कर पाना लगभग असंभव था।

जातियां उच्च और निम्न के गुटों में बंटी हुई थीं। इसके अलावा छुआछूत के भेदभाव भी बहुत मजबूत थे। ब्राह्मण, बनिया, राजपूत जैसी कई जातियां 'उच्च' मानी जाती थीं, तो उनके बाद किसान, सुनार, लुहार, कुम्हार, सुथार जैसी शूद्र मानी जाने वाली कारीगर जातियां थीं। उच्च जातियों की सेवा करना शूद्रों का

दायित्व माना जाता था, बुनकर, चमार, सफाई करने वाले आदि तो अस्पृश्य ही माने जाते थे। उनका तो जन्म ही मानो उच्च जातियों की गुलामी करने के लिए हुआ हो, ऐसा व्यवहार उनके साथ किया जाता था।

शकरी: लेकिन ये 'निम्न' कहलाने वाली जातियों के लोग 'उच्च जाति' के लोगों की सेवा क्यों करते थे? क्या वे पढ़-लिख कर आगे नहीं बढ़ सकते थे?

एकता: उस समय उच्च शिक्षा पाने का अधिकार सिर्फ ब्राह्मणों को ही था। अन्य जाति के लोग अपने व्यवसाय में जैसा जरूरी होता, वैसा लिखना-पढ़ना और हिसाब करना सीखते थे। कारीगर जाति के शूद्र या अछूत माने जाने वाले लोगों को तो पढ़ना-लिखना सीखने का भी अधिकार नहीं था।

कमला: और क्या स्त्रियों को पढ़ाया जाता था? उनकी स्थिति कैसी थी?

एकता: शूद्रों और दलितों की तरह किसी भी जाति की स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था।

इस तरह भारतीय स्त्रियां अंग्रेजों की गुलामी के अलावा जाति व धर्म के नाम पर बनाये गए अनेक रीति-रिवाजों से जकड़ी हुई थीं। स्त्री की पवित्रता और पतिव्रता धर्म के नाम पर बाल-विवाह, स्त्री-शिक्षा की मनाही, बाल विधवाओं पर होने वाले अत्याचार, सती प्रथा जैसे अनेक अन्याय व अत्याचार स्त्रियों पर होते थे। स्त्रियों और बालिकाओं के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता था मानो वे जीवित व्यक्ति नहीं, वरन कुटुम्ब, कुल, जाति, धर्म आदि की मर्यादाएं पालन करने वाली निर्जीव मूर्ति हों। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में इस तरह के अन्याय के खिलाफ सिर उठाना मानो असंभव जैसा था। इन परिस्थितियों में तरह तरह के विरोध सहन करके शिक्षा प्राप्त करने और शूद्रों - दलितों या अन्य स्त्रियों को शिक्षा प्रदान करने में पहल करने वाली सावित्री बाई या रुकैया सखावत हुसैन जैसी स्त्रियों का काम कितना मुश्किल रहा होगा, उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

फरजाना: हमें उनके बारे में बताओ ना?

एकता: मैं सर्वप्रथम आपको सावित्री बाई फूले के बारे में बताती हूं।

सावित्री बाई 1831-1897

सावित्री बाई का जन्म 1831 में हुआ था। उस समय के रिवाज के मुताबिक उनका विवाह बचपन में ही प्रखर समाज सुधारक ज्योतिबा के साथ हुआ था। वे जाति से माली थीं। उस जमाने में स्त्रियों और शूद्रों को शिक्षण का अधिकार नहीं था। परंतु अंग्रेजी शिक्षा शुरू होने पर ज्योतिबा ने परिश्रम कर के शिक्षा प्राप्त की। उन्होंने अपनी पत्नी को शिक्षित करने का निश्चय किया। रूढ़िग्रस्त समाज को यह मंजूर नहीं था कि एक शूद्र स्त्री शिक्षा प्राप्त करे। समाज ने ज्योतिबा के पिता को धमकी दी कि अगर वे उन्हें नहीं रोकेंगे तो उन्हें जाति से बाहर कर दिया जाएगा। अतः पति-पत्नी ने पिता का घर छोड़ दिया, पर शिक्षा प्राप्त करना जारी रखा। शिक्षा पाने के बाद तो सावित्री का व्यक्तित्व और तेज़ प्रदीप्त हो उठा। उन्होंने दलित बालिकाओं को पढ़ाना शुरू किया। 1848 में अस्पृश्य मानी जाने वाली महार जाति की बालिकाओं के लिए उन्होंने प्रथम बालिका विद्यालय की स्थापना की और महाराष्ट्र की प्रथम अध्यापिका बनीं। यह कोई सरल काम नहीं था। जाति-बाहर तो उन्हें कर ही दिया गया था, इसके उपरांत जब सावित्री बाई शाला में दलित बालिकाओं को पढ़ाने जातीं, तो रूढ़िग्रस्त लोग उन पर कीचड़ और पत्थर फेंकते थे। इन तमाम विरोधों के बावजूद वे अनेक स्त्रियों के जीवन में शिक्षा की ज्योति से उजाला फैलाती रही।

उन्होंने दलित स्त्रियों को पढ़ाने का काम किया, तो ब्राह्मण विधवा पर होने वाले अत्याचारों को रोकने का काम भी किया। उस जमाने में होने वाले बाल-विवाहों

के कारण बालिकाएँ बचपन में ही विधवा हो जातीं थीं और ब्राह्मण जाति की विधवाएँ अपने सिर पर बाल तक नहीं रख सकती थीं। उनका सिर मूंडने के लिए प्रत्येक महीने नाई घर आता था। बाल-विधवाओं की स्थिति बहुत दयनीय थी। उनकी इस अपमानजनक दशा को रोकने के लिए ज्योतिबा और सावित्री बाई ने नाई समाज की सभा आमंत्रित की और उनको विधवाओं के बाल काटने का विरोध करने के लिए समझाया। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया और उच्च जाति के परिवारों में अपमानित होने वाली विधवाओं के लिए आश्रम की स्थापना की।

1860 में ज्योतिबा और सावित्री बाई ने विधवा विवाह कराकर समाज-सुधार की शुरूआत की। ब्राह्मणों के वर्चस्व और रीति-रिवाज़ की पकड़ से समाज को छुड़ाने के लिए उन्होंने उस जमाने में कोर्ट में विवाह करने की बात की।

ऐसे में ज्योतिराव फुले की जब मृत्यु हुई तब उनकी अंतिम यात्रा में हंडिया पकड़ने वाला कोई नहीं था, क्योंकि उन्हें जाति से बाहर कर दिया गया था। सावित्री बाई ने पति की श्मशान यात्रा में हंडिया खुद पकड़ी और उनकी अंतिम यात्रा पूरी की।

पति की मृत्यु के बाद भी उनका काम जारी रहा। अंत में सावित्रीबाई की मृत्यु महाराष्ट्र में फैली प्लेग की महामारी में रोगियों की सेवा-शुश्रूषा करते हुई। इस तरह अंतिम सांस तक उन्होंने समाज में जाति प्रथा और पुरुष प्रधानता को बदलने की दिशा में अपनी यात्रा जारी रखी।

नीरू: सावित्री बाई ने विधवाओं की समस्याओं को इतना महत्त्व क्यों दिया?

एकता: उस समय बालिका के मासिक धर्म होने से पहले ही उसे ब्याह दिया जाता था। कई बार तो बच्चे जब पालने में होते थे, तभी उनके विवाह कर दिये जाते थे। उस समय आज की तरह दवाखाने, डाक्टर या तरह-तरह की दवाओं के आविष्कार नहीं हुए थे। अतः बाल मृत्यु दर बहुत अधिक था। कई बार तो लड़की, विवाह किसे कहते हैं यह समझे, उससे पहले ही उसके बालक-पति का देहान्त हो जाता था और वह विधवा हो जाती थी। 'उच्च जाति' में विधवा बालिकाओं को जबरन वैधव्य का

पालन करना पड़ता था। उनका दुबारा विवाह नहीं हो सकता था और जीवन भर उन्हें हर तरह के सुख या आनंद से वंचित रहना पड़ता था। वे रंगीन वस्त्र नहीं पहन सकती थीं, अच्छा भोजन नहीं कर सकती थीं और परिवार में मांगलिक कार्यो में उनकी उपस्थिति को अशुभ समझा जाता था। उनको जीवन भर घर के एक कोने में रहकर, परिवार के अन्य सदस्यों की बेगार करते हुए दिन बिताने पड़ते थे। कुछेक जातियों में पति के शव के साथ पत्नी को जीवित जला देने का रिवाज था, जिसे सती प्रथा कहा जाता था।

रेशमाः हां, हमने पढ़ा है कि सती प्रथा के खिलाफ राजा राममोहन राय ने अभियान छेड़ा था।

आशाः तो क्या सभी जातियों की स्त्रियों की यही स्थिति थी?

एकताः नहीं, अलग-अलग जातियों में स्त्रियों की स्थिति भी अलग-अलग थी। ऊपर जिन प्रश्नों की विशेष रूप बात की गई है वे तथाकथित 'उच्च जाति' के थे। जाति जितनी ऊंची, उतना ही ज्यादा उनकी स्त्रियों पर अंकुश रहता था। स्त्रियों को परिवार व जाति की पवित्रता बनाये रखने के लिए घर में ही रहना पड़ता था और 'पतिव्रत' धर्म का पालन करना पड़ता। 'उच्च-जाति' की स्त्रियों को दहेज प्रथा, दूध में डुबोकर बच्ची को मार डालना,

पर्दा प्रथा, सती प्रथा, विधवाओं पर दमन जैसी समस्याएं सहन करनी पड़ती थीं। वैसे 'उच्च जाति' के पुरुषों के लिए ऐसे कोई बंधन नहीं थे। वे तो पत्नी की मौजूदगी में भी कानूनन एक से ज्यादा पत्नी रख सकते थे।

इनके विपरीत, कारीगर वर्ग के और दलित जातियों में स्त्री विधवा हो जाती, तो दूसरा विवाह कर सकती थी, जिसे 'नाते जाना' कहा जाता था। इन जातियों में स्त्री-पुरुषों तमाम को मजदूरी करने जाना पड़ता था। उनकी स्त्रियां घर में बैठी रहें तो उनका गुज़ारा होना संभव ही नहीं था। इन गरीब, श्रमजीवी स्त्रियों के श्रम के साथ-साथ उनके मालिक उनका यौन-शोषण भी करते थे।

कमला: तो क्यां यह कह सकते हैं कि "उच्च जातियों" में स्त्रियों का घर में अधिक शोषण होता था, जबकि "निम्न जातियों" में घर से बाहर शोषण होता था!

एकता: तुमने बिल्कुल सही समझा है। "उच्च" जाति की स्त्रियों को परिवार में पितृसत्ता का सामना ज्यादा करना पड़ता, जबकि "निम्न जाति" की स्त्रियों को समाज की और उच्च जाति की पितृसत्ता का सामना ज्यादा करना पड़ता। पितृसत्ता और जाति प्रथा को अपने कार्य और जीवन से ललकारने वाली एक और महिला थीं: पंडिता रमाबाई सरस्वती।

नीरू: ऐसा कैसा नाम?

रेशमा: क्या वह वाकई में पंडिता थी? हमें उनके बारे में बताओं।

पंडिता रमाबाई सरस्वती 1858-1922

रमाबाई का जन्म 1858 में हुआ था। उनके पिता अनंतशास्त्री मराठी ब्राह्मण थे। उन्होंने अपनी पत्नी को संस्कृत सिखाना शुरू किया। उस जमाने में महिलाओं को शिक्षा देने पर पाबंदी थी। अतः उनको जाति से बाहर कर दिया गया और उन्हें गांव छोड़कर जंगल में रहना पड़ा। जंगल में ही रमाबाई का जन्म हुआ। अनंतशास्त्री ने पुत्री को संस्कृत भाषा और वेद-पुराण पढ़ाये। जब रमाबाई सोलह वर्ष की हुई, तभी उनके माता-पिता चल बसे। रमाबाई और उनके भाई को किसी ने सहारा नहीं दिया। मानो शिक्षा प्राप्त कर उन्होंने कोई पाप किया

हो! घूमते-फिरते वे कलकत्ता पहुंचे, जहां ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय आदि ने उनका स्वागत किया और उन्हें पंडिता व सरस्वती की उपाधि दी।

रमा बाई ने खुद की मर्जी से एक शूद्र पुरुष से विवाह किया और जाति प्रथा को तोड़ा। इससे रूढ़िवादी और अधिक क्रुध्ध हुए। जीवन के एक मोड़ पर उन्होंने ईसाई धर्म को अपनाया, वहां भी उन्होंने स्त्री-पुरुष असमानता के सवाल खड़े किये। विधवा होने के बाद वे इंग्लैंड-अमेरिका तक गईं, जिससे वे वहां के समाज और संस्थाओं के बारे में जान सकें। भारत लौटकर उन्होंने महिलाओं के लिए आश्रम और स्कूल की शुरूआत की जिसका नाम-शारदा सदन रखा।

वे कहा करती थीं कि 'स्त्रियां चुपचाप सब सहन करती हैं, क्योंकि वे पुरुषों पर आश्रित हैं। पुरुष स्त्रियों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते हैं। जब स्त्रियां अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करती हैं, तब कहा जाता है कि वे पुरुषों के खिलाफ बगावत कर रही हैं, यह पाप है। परंतु हकीकत में तो जुल्म को चुपचाप सहन करना और उसका विरोध न करना ही सबसे बड़ा पाप है।'

शकरी: सही में सावित्री बाई और रमा बाई ने न सिर्फ स्त्री शिक्षा का काम किया वरन् जाति प्रथा और पितृसत्ता को भी ललकारा।

एकता: सही बात, पर ये सुधार युग के अलग अलग प्रवाहों को समझने के लिए रकमा बाई के बारे में भी हमें जानना चाहिए।

रेशमा: उनके बारे में अब अगली बार बात करेंगे। आज हमने शिक्षा और समानता के रास्ते खोलने वाली महिलाओं के बारे में जाना। इसलिए आज की चर्चा की समाप्ति उस गाने से करें तो कैसा रहे जो यह बताता है कि लड़कियों को क्यों पढ़ना चाहिए?

सब: ठीक है तुम गाना शुरू करो, हम सब शामिल हो जायेंगे।

मैं लड़की हुँ मुझे पढ़ना है

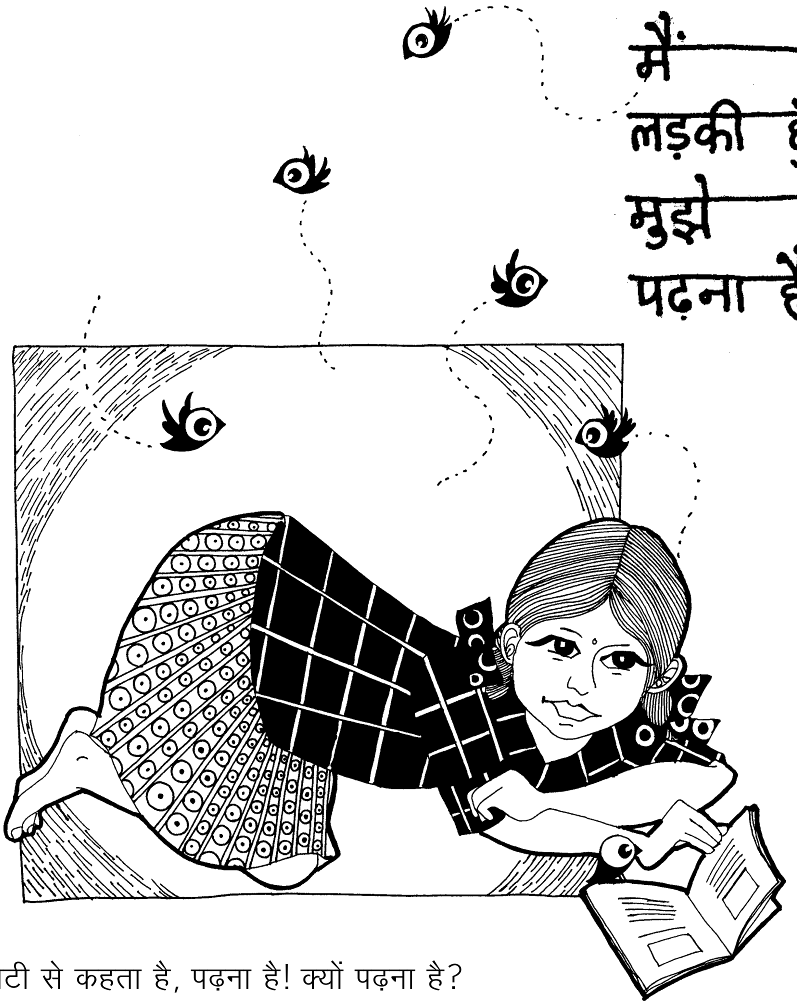

बाप-बेटी से कहता है, पढ़ना है! क्यों पढ़ना है?
पढने को बेटे काफी है, तुम्हे क्यों पढना है?
बेटी बापसेः जब पूछा ही है तो सुनो, मुझे क्यों पढना है
क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है
पढ़ने की मुझे मनाही है, सो पढ़ना है
मुझ में भी ये तरुणाई है, सो पढ़ना है
सपनों ने ली अंगड़ाई है, सो पढ़ना है
कुछ करने की मन में आई है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है
मुझे दर दर नही भटकना है, सो पढ़ना है
मुझे अपने पावों पर चलना है, सो पढ़ना है
मुझे अपने डर से लड़ना है, सो पढ़ना है
मुझे अपने आप ही गढ़ना है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है
कई जोर जुल्मों से बचना है, सो पढ़ना है
कई कानूनों को परखना है, सो पढ़ना है
मुझे नये धर्मों को रचना है, सो पढ़ना है
मुझे सब कुछ ही तो बदलना है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है
हर ज्ञानी से बतियाना है, सो पढ़ना है
मीरा का गाना गाना है, सो पढ़ना है
अनपढ़ का नहीं जमाना है, सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है

- कमला भसीन

संघर्ष जारी है...
शिक्षा और समानता के लिए

एकता: 19 वी सदी में भारतीय स्त्रियों की परिस्थिति के संदर्भ में नारी अधिकारों के समर्थक सुधारकों, सांस्कृतिक राष्ट्रवादियों और अंग्रेज सरकार सभी के विचारों का टकराव रकमा बाई के जीवन और संघर्ष में देखने को मिलता है।

रकमाबाई 1864-1955

रकमाबाई का लालन-पालन उनके पालक पिता सखाराम अर्जुन के घर मुंबई में हुआ था। पिता डॉक्टर थे और वे समाज सुधार की बातें करने की बजाय उन्हें जीवन में उतारते थे। पिता के गहरे प्रभाव के कारण रकमाबाई ने भी डॉक्टर बनना तय किया, लेकिन उस समय के रीति-रिवाज के मुताबिक 11 वर्ष की उम्र में उनका विवाह ददाजी के साथ कर दिया गया था। पर विवाह के बाद वे उनके साथ कभी नहीं रहीं। 19 वर्ष की उम्र में जब पति ने उनको अपने साथ रहने के लिए बुलाया तब दोनों के बीच उम्र, शिक्षा, रहन-सहन और वैचारिक क्षमता की गहरी खाई थी। अतः रकमाबाई ने ददाजी के घर जाने से इनकार कर दिया। पिता सखाराम अर्जुन ने पुत्री के निर्णय को मान लिया। ददाजी ने वैवाहिक जीवन का अधिकार भोगने के लिए रकमाबाई के खिलाफ अदालत में दावा किया।

उस समय रकमाबाई ने 'एक हिंदू स्त्री' के नाम से 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में दो पत्र लिखे। पत्र में उन्होंने बाल-विवाह, जबरन वैधव्य पालन और शिक्षा से मनाही जैसे मुद्दों के कारण स्त्रियों पर होने वाली दुर्दशा का चित्रण किया था। इन पत्रों ने रूढ़िग्रस्त हिंदू समाज में खलबली मचा दी। लोगों ने तर्क दिये कि ऐसा पत्र लिखने वाली कोई स्त्री हिन्दू नहीं हो सकती।

रकमाबाई का तर्क था कि 11 वर्ष की नाबालिग उमर में उनका विवाह हुआ था, अतः उस विवाह में उनकी सहमति नहीं थी। जब वैवाहिक जीवन शुरू ही नहीं हुआ तो पति उन्हें अपने साथ रहने को बाध्य कैसे कर सकते हैं। यह केस अंग्रेज न्यायधीश के कोर्ट में था।

1885 में केस का फैसला रकमाबाई के पक्ष में आया। इस फैसले के खिलाफ ऊहापोह मचाने वाले सिर्फ रूढ़िवादी ही नहीं थे, वरन् 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देने वाले राष्ट्रवादी नेता तिलक भी थे। उन्होंने इस सवाल को हिंदू रीति-रिवाज के मुताबिक उत्पन्न होने वाली स्त्री की दयनीय परिस्थिति के संदर्भ में देखने के बजाय इस दृष्टि से देखा कि अंग्रेजों को हिन्दुओं पर अपने कानून लादने का अधिकार है या नहीं। उन्होंने और उनके जैसे अन्य लेखकों ने उनके पत्र 'केसरी' में तर्क दिया कि अगर अंग्रेजी कानून विधिवत सम्पन्न हुए हिन्दू विवाहों को रद्द करेगा तो हिन्दू समाज पर संकट आ जाएगा... हिंदू विवाह में 'कन्या' दान में देने की वस्तु है, उसकी सहमति का सवाल ही नहीं उठता। विवाह एक करार नहीं, वरन संस्कार है, अतः एक बार विवाह हो जाने के पश्चात स्त्री की सहमति का प्रश्न खड़ा ही नहीं होता.. शिक्षा स्त्री को बिगाड़ती है। आज एक शिक्षित स्त्री अपने पति से मुक्त होने का दावा कर रही है... इत्यादि।

बहुसंख्यक हिन्दू समाज के विरोध के दबाव में आकर 1887 के दूसरे फैसले में जज ने अपना दृष्टिकोण बदला और रकमाबाई को पति के साथ रहने का हुक्म

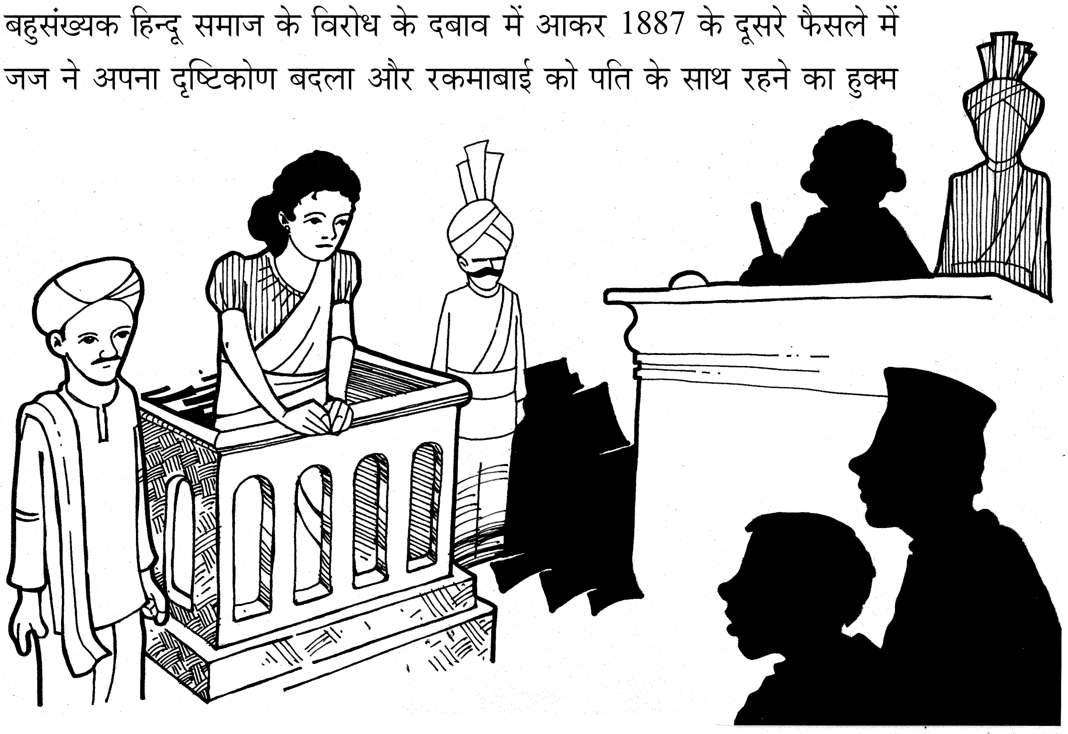

दिया। यदि वह वैसा नहीं करती है तो उसे छः माह की जेल की सजा भुगतनी पड़ेगी। रकमाबाई ने पति के घर जाने की बजाय जेल की सजा पसंद की।

इस फैसले से एक बात स्पष्ट हो गई कि ब्रिटिश सरकार को जब 'न्याय' और राजनीतिक हित के मध्य चुनाव करना होता था तब वह न्याय की कीमत पर राजनीतिक हित की सुरक्षा करती थी। स्त्रियों को न्याय देने के लिए बहुसंख्यक हिंदुओं की नाराजगी झेलकर वह अपने शासन के राजकीय हितों को जोखिम में डालने को तैयार नहीं थी।

इन फैसलों की चर्चा भारत में ही नहीं, इंग्लैंड में भी हुई। कई प्रगतिशील लोगों ने रकमाबाई प्रोटेक्शन कमेटी स्थापित की और केस की अपील हेतु लंदन की प्रीवी कौंसिल में ले जाने के लिए फंड इकट्ठा किया। प्रीवी कौंसिल तक जाने की ददाजी की क्षमता नहीं थी। उन्होंने कहा कि अगर रकमाबाई उनको 2000 रु. चुका दें तो वे उन पर अपना अधिकार छोड़ने को राजी हैं। इस तरह मामले का समाधान हुआ। पर उनके द्वारा उठी चर्चा की वजह से दूसरे कानूनों में थोड़े सुधार हुए।

बात यहीं समाप्त नहीं हुई है। रकमाबाई की जिंदगी का दूसरा अध्याय अभी बाकी था। उन्हें डॉक्टर बनना था। उस समय महाराष्ट्र में एक भी महिला डॉक्टर नहीं थी। इलाज के अभाव में स्त्रियां मर जाती थीं। एक अंग्रेज महिला डॉक्टर की सिफारिश पर एक परिचित दम्पत्ति रकमाबाई को लंदन में अपने घर पर रखने को तैयार हो गया। 22 वर्षीया रकमाबाई एक महीने स्टीमर में यात्रा करके अकेली अनजाने देश में डॉक्टर बनने निकल पड़ीं। 1890 में उन्होंने 'लंदन स्कूल ऑफ मेडिसिन फॉर वीमेन' में प्रवेश लिया और बहुत मेहनत के बाद 1895 में वे डॉक्टर बनीं। भारत लौटकर वे मुम्बई के कामा अस्पताल से जुड़ गईं। उसके कुछ समय पश्चात् उन्हें सूरत में शुरू होने वाले महिला एवं बाल अस्पताल में काम करने का निमंत्रण मिला। इसके साथ ही

सूरत उनकी कर्मभूमि बन गया। वे सूरत के उस अस्पताल में ही नहीं, महिलाओं की विविध संस्थाओं और प्रवृत्तियों का शुभारंभ करने हेतु सहभागी बनीं। आज भी सूरत में 'रकमाबाई अस्पताल' है। 1896 में प्लेग और 1897 में अकाल के समय जब लोग सूरत छोड़कर जा रहे थे, तब रकमाबाई ने वहीं डटी रहकर दुखियों की सेवा-शुश्रूषा की और सरकार ने उनको 'केसर-ए-

हिन्द' की उपाधि से विभूषित किया था। 1918 के बाद वे सौराष्ट्र के चीफ डाक्टर की हैसियत से राजकोट अस्पताल से जुड़ीं और वहां भी वे अनेक स्त्रियों के जीवन में बदलाव लाने का माध्यम बनीं। उन्होंने रेडक्रॉस सोसाइटी की प्रवृत्ति शुरू की। जीवन भर उन्होंने सखाराम अर्जुन की अन्य संतानों की देखभाल की और डॉक्टरी सेवा के अलावा स्त्रियों और बच्चों के विकास के लिए काम किया।

नीरू: उस जमाने में इतनी हिम्मत करने के लिए रकमाबाई को दाद देनी चाहिए।

कमला: लेकिन 'स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' जैसा क्रांतिकारी नारा देने वाले बाल गंगाधर तिलक ने ऐसा रुख अपनाया था, यह तो आश्चर्य की बात है!

शकरी: सही है! अगर हर किसी को खुद पर राज करने का हक हो तो क्या स्त्री को नहीं? चार फेरे क्या लिए और चार मंत्र क्या बोले कि बस, जैसे स्त्री का अपना जीवन और अपने शरीर पर कोई हक ही नहीं रहा?

एकता: यही सवाल रुक्माबाई और उनका समर्थन करने वाले सुधारकों ने उठाया, परंतु तिलक जैसे कई राष्ट्रवादी नेताओं ने ऐसा रुख अपनाया कि अंग्रेज़ सरकार को हिन्दू धर्म के नियम-कानूनों की व्याख्या करने का अधिकार नहीं है। संस्कृति के स्वर्ण युग को सिद्ध करने की धुन में वे यह नहीं देख पाये कि स्त्रियों की इन परिस्थितियों की जड़ें ऊंच-नीच के भेदभाव वाली जाति प्रथा और पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित हैं। पितृसत्ता व जाति प्रथा को ललकारे बिना भारतीय संस्कृति के भव्य भूतकाल की बात करने से ये प्रश्न हल नहीं किये जा सकेंगे।

आशा: हमने आगे यूरोप के अनुभव की बात देखी थी। यूरोप की ही तरह हमारे नेताओं ने भी मनुष्य के जन्म सिद्ध अधिकार की बात की, पर उसमें से आधी मानव जाति को बाहर ही रखा।

एकता: अंग्रेज सरकार ने भी 1857 की क्रांति के बाद तय किया था कि 'वे गुलाम देशों के धार्मिक मामलों में दखलंदाजी नहीं करेंगे' क्योंकि समाज के अधिकांश लोग रूढ़िग्रस्त थे। मुट्ठी भर सुधारकों के कहने से बहुसंख्यकों का गुस्सा झेलने की उनकी

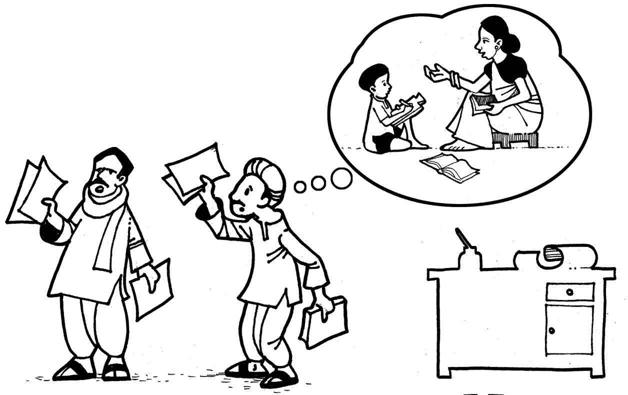

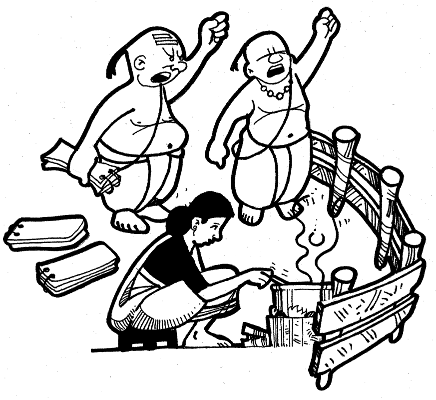

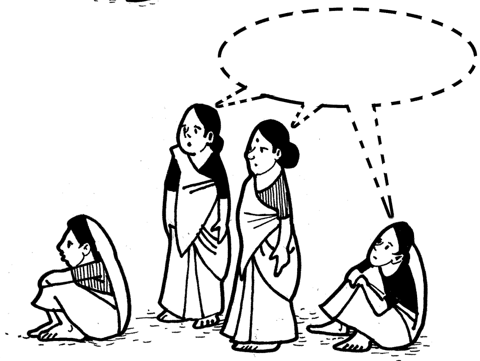

तैयारी नहीं थी। अतः सती प्रथा के विरुद्ध कानून पारित करने के बाद, अंग्रेज़ सरकार ने सुधारकों की बार-बार मांग के बावज़ूद, सुधार के लिए कोई कानून पारित नहीं किया। स्त्रियों के साथ न्याय करने की बजाय अपनी सत्ता को बचाने का उनका रुझान था। रकमाबाई के मामले में ये साफ तौर पर देखने को मिला।

फरजानाः क्या मुसलमान स्त्रियों को शिक्षा प्राप्ति का अधिकार दिलाने के लिए किसी ने प्रयत्न किया था?

एकताः हां, अनेक मुसलमान पुरुषों और स्त्रियों ने इसके लिए काम किया था। जैसे नजीर अहमद, मौलवी सैयद मुमताज अली और उनकी बीवी मुहम्मदी बेगम, करामत हुसैन, शेख अब्दुल्ला आदि को याद करना जरुरी है। इनमें से नजीर अहमद के बारे में बताती हूं। बिजनौर में जन्मे नजीर अहमद अंग्रेज सरकार के अफसर थे। उन्होंने अपनी बेटियों को पढ़ाना शुरू किया, पर उनके लिए कोई उपयुक्त पुस्तक न मिलने पर 1869 में एक विशेष पुस्तक तैयार करवाई, जिसका नाम था 'मिरातुल उरूस'।

आशाः मिरातुल उरूस?

एकताः मतलब, गृहिणी दर्पण। अत्यंत प्रसिद्धि प्राप्त इस पुस्तक में उस समय के हिसाब से ऐसी बातें लिखी थी, जिन्हें क्रांतिकारी कहा जा

सकता है, जैसे कि लोग स्त्रियों को पढ़ाना - लिखाना बुरा समझते हैं, क्योंकि उनको डर है कि स्त्रियां पराये पुरुषों को पत्र लिखने लगेंगी और उससे उनकी पवित्रता व पर्दादारी दोषयुक्त हो जाएगी। इस विचार के विरुद्ध में लिखा था कि 'ये सिर्फ शैतानी आकांक्षाएं हैं। देश और स्त्रियों का दुर्भाग्य ही लोगों को भड़का रहा है... इल्म (शिक्षा) अगर इंसान को बिगाड़ता हो और बुरे लक्षण सिखाता हो तो पुरुषों को भी पढ़ने की मनाही होनी चाहिए, ताकि वे न बिगड़े... खुदा ने स्त्रियों को इतनी ज्यादा अक्ल इसलिए दी है कि वे इल्म हासिल करें (शिक्षा प्राप्त करें)।'

रेशमा: और मुसलमान स्त्रियां...

एकता: स्त्रियों में दो महत्त्वपूर्ण नाम है अशरफुन्निसा, जिसने रसोईघर के तवे के काजल से जमीन या कागज पर लिख-लिखकर अक्षरों की नकल की और अपने आप मेहनत करके उर्दू लिखना-पढ़ना सीखा। और दूसरी महिला है रुकैया सखावत हुसैन। उनमे से मैं तुम्हें रुकैया सखावत हुसैन के बारे में बताऊंगी। उनकी उस जमाने में लिखी कहानी 'सुलताना का सपना' तो आज की तमाम नारीवादी महिलाओं के लिए भी प्रेरणा स्वरूप है।

रुकैया सखावत हुसैन 1880-1932

रुकैया सखावत का जन्म 1880 में हुआ था। उनके पिता अत्यंत रूढ़िवादी थे। उनके परिवार की स्त्रियां हमेशा बुर्के में रहती थीं। स्त्रियों को कुरान के सिवा दूसरी कोई पुस्तक पढ़ने की छूट नहीं थी। रुकैया को अंग्रेज़ी पढ़ने की बड़ी इच्छा थी। पढ़ने की उसकी तीव्र उत्कंठा को देखकर उनके बड़े भाई का हृदय पसीज उठा। लेकिन परिवार का विरोध कैसे करें ! जब घर के सारे लोग सो जाते तब भाई चुपके से मोमबत्ती जलाकर बहन को पढ़ाता।

सोलह वर्ष की उम्र में उनका विवाह सैयद सखावत हुसैन के साथ हुआ। रुकैया की पढ़ने की इतनी अदम्य इच्छा देखकर उनके पति उन्हें आगे पढ़ाने में मददगार बने। उन्होंने अच्छी तरह अंग्रेज़ी सीखी और अपने पति के काम में, पत्र व्यवहार का दायित्व संभाल कर, उनकी मदद करने लगीं। जब वे 29 वर्ष की थीं तभी उनके पति चल बसे। लेकिन रुकैया ने हिम्मत न हारी। लड़कियों

के लिए शिक्षण प्रवृत्ति शुरू करने की उनकी बड़ी इच्छा थी। अब रुकैया ने अपने मकसद को पूरा करने के लिए लड़कियों के लिए शाला खोली। कट्टरवादियों ने उनका सख्त विरोध किया। आखिर वह कलकत्ता गईं और वहां एक पाठशाला शुरू की। उनके द्वारा शुरू की गई पाठशाला आज भी कलकत्ते की अच्छी पाठशालाओं में से गिनी जाती है। उन्होने बंगाली और अंग्रेज़ी में किताबें लिखीं। 1908 में लिखी हुई उनकी कहानी **'सुलताना का स्वप्न'** वर्तमान युग में भी एक क्रांतिकारी रचना के रूप में जानी जाती है। इस कहानी में उन्होंने कल्पना की है कि अगर स्त्री और पुरुष की भूमिकाएं बदल दी जाएं तो दुनिया कैसी लगेगी।

9 दिसम्बर 1932 को प्रातः काल उनका देहांत हुआ। देहांत की पिछली रात 11 बजे तक वह पाठशाला का काम कर रही थीं और सुबह उनकी टेबल पर 'स्त्रियों के अधिकार' शीर्षक का लेख आधा लिखा हुआ पड़ा मिला। इस तरह जीवन के अंतिम सांस तक उन्होंने स्त्रियों के लिए काम किया।

कमलाः रुकैया सखावत हुसैन की बात सुनकर तो मुझे लगता है कि जिंदगी में कुछ करना चाहिए।

रेशमाः हां, स्त्री की जिंदगी चूल्हे-चौके और बच्चों के बीच शुरू होकर वहीं पूरी हो जाए - समाज के इस नियम को हम क्यों मानें? इसी बात पर एक अच्छा सा गाना गायेंगे।

मैने सपना सुहाना एक देखा

मैने सपना सुहाना एक देखा
मुझे बांध सके ना कोई रेखा

दौड़ी ऐसी मैं तेज जैसे,
पांव चले पानी की रेल रे
मैं तो जीत गई सब के सब खेल रे
मेरे मजबूत पैर कर ले एक लंबी सैर
बदले अपनी किस्मत का लेखा...
मुझे बांध सके ना कोई रेखा

छूने को आसमान, हाथ उठाये मैंने
देखा तो पंख निकले हाथ में
कानों में जाके मैने मां को मंतर फूंका
तुम भी चलो ना मेरे साथ में
पहुंचे हम दोनों जहां रोक न टोक वहां
राहें बनें हाथों की रेखा...
मुझे बांध सके ना कोई रेखा

पहुंचें और भी आगे जहां
खिलखिल उठा ये दिल डोल के
कुछ भी पढ़ने को सब दरवाजे खोल के
ठान लूं जो भी मन में, कर भी लूं इसी जीवन में
सपना सच होने वाले मेरा...
मुझे बांध सके ना कोई रेखा

- मीनल पटेल

एकता: बहुत अच्छा गाना है। इसी तरह से भारत की स्त्रियों ने रेखाओं के बंधनों को तोड़ने की शुरूआत की थी। और बीसवीं सदी आने तक शिक्षित स्त्रियों की एक पीढ़ी तैयार हो गई थी। सुधारवादी पुरुषों के सहयोग से देश के अलग-अलग भागों में स्त्रियों द्वारा स्वयं शुरू की गईं संस्थाएं दिखाई देने लगीं।

भारत महिला परिषद, पारसी वीमेन्स सर्किल, अंजुमने खवातीन-ए-इस्लाम आदि महिला-संस्थाएं बीसवीं सदी के प्रारंभ में स्थापित हुईं। इन संस्थानों को कौन-कौन से मुद्दे उठाने चाहिए और कौन-कौन से काम करने चाहिए, इस पर पुरुष सुधारकों का प्रत्यक्ष-परोक्ष असर था। पुरुष सुधारकों द्वारा बंधी मर्यादा के बीच एक कुशल गृहिणी, सुशिक्षित माता और घर परिवार की जिम्मेदारी अच्छी तरह से पूरी करने के बाद सामाजिक कामों में भी स्त्रियां भाग लें, ऐसी उनकी अपेक्षा थी। यद्यपि आगे चलकर इन संस्थाओं में काम करने के अनुभव को लेकर कई शिक्षित महिलाएं अपनी समस्याएँ अपने आप उठाने में सक्षम हो गईं और खुद महिला संस्थाएं स्थापित करने लगीं।

शकरी: इनकी बाते हम फिर मिलेंगे तब करेंगे। आज के दिन की चर्चा अब रोक दें।

नारी संस्थाओं की शुरूआत और स्वातंत्र्य संग्राम में स्त्रियां

एकता: शुरूआत में शिक्षित पुरुषों की सहायता से सार्वजनिक जीवन में कार्यरत महिलाओं की पुत्रियों ने जब शिक्षा प्राप्त करना शुरू किया, तब वे अपनी माताओं से एक कदम आगे बढ़ीं और उन्होंने महिलाओं की अपनी संस्थाएं शुरू की। ऐसी ही एक महिला थीं, सरला देवी चौधरानी।

सरला देवी चौधरानी 1872-1946

सरला देवी का जन्म 1872 में साहित्यकार और समाज सेवी स्वर्णकुमारी देवी (जो रवीन्द्रनाथ टैगोर की बहन भी थी) की कोख से एक प्रगतिशील परिवार में हुआ। ये परिवार ब्रह्मो समाज के साथ जुड़ा हुआ था। 23 साल की उम्र में सरला देवी अपने परिवार से विद्रोह करके बंगाल से मैसूर एक कन्याशाला में नौकरी करने गई थीं।

बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा लिखे गीत वंदेमातरम् को राष्ट्रगीत बनाने का श्रेय सरला देवी को जाता है। इस गीत की प्रथम दो कड़ी की धुन रवीन्द्रनाथ टैगोर ने बनाई थी परंतु शेष कड़ियों को सरला देवी ने लयबद्ध किया था और कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर गाकर इसे विख्यात बनाया था। उन्होंने देशभक्ति के अनेक गीतों को संगीतबद्ध किया था। वे मानती थीं कि शारीरिक सक्षमता बहुत जरूरी है। युवा लड़कों - लड़कियों को प्रशिक्षण देने के लिए उन्होंने 1903 में कलकत्ते में मार्शल आर्ट अकादमी स्थापित की थी। वे क्रांतिकारी आंदोलन से सम्बद्ध थीं।

विवाह के उपरांत पंजाब में स्थाई रूप से रहने लगी थीं। इस दौरान, भारतीय राष्ट्रीय सामाजिक परिषद के साथ साथ महिलाओं के सवालो की चर्चा करने के लिए भी सभा का आयोजन होता था। लेकिन स्त्रियों के इस वार्षिक बैठक में सवालों को पूरा न्याय नहीं मिल पाता, ऐसा महसूस होने पर सरला देवी ने स्त्रियों के एसोसियेशन की स्थापना करने का निर्णय किया। इस पर साथी पुरुष कार्यकर्ताओं ने जब विरोध किया तब उन्होंने लिखा कि, "मर्द अपने आपको अबलाओं के उद्धारक मानते हैं। साल में एक बार सभा में भाषण देने के लिए स्त्री शिक्षण, औरतों की समानता जैसे विषयों को पसंद करते हैं, लेकिन ये मनु की प्रतिछाया में रहते हैं और औरतें स्वतंत्र काम करें उसका विरोध करते है।"

आखिरकार 1910 में उन्होंने लाहौर में 'भारत महिला महामंडल' की स्थापना की थी। भारत के अनेक शहरों में उसकी शाखायें खोली गई थीं। उसका मुख्य उद्देश्य महिला शिक्षा को प्रोत्साहन देना था। इस संस्था की इलहाबाद शाखा में बालिकाओं को पाठशाला में भेजने के लिए समझाने अध्यापकों को घर-घर भेजा गया था। भारत महिला महामंडल की खासियत यह थी कि इसने हर धर्म और जाति की नारी को एकसूत्र में बांधने का महत्त्वपूर्ण काम किया।

1919 के पश्चात् सरला देवी गांधीजी के सम्पर्क में आईं और अहिंसक सत्याग्रह में विश्वास करने लगीं। साहित्य के क्षेत्र में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा था। बंगाल की साहित्यिक पत्रिका 'भारती' का उन्होंने दस वर्षों तक संपादन किया था।

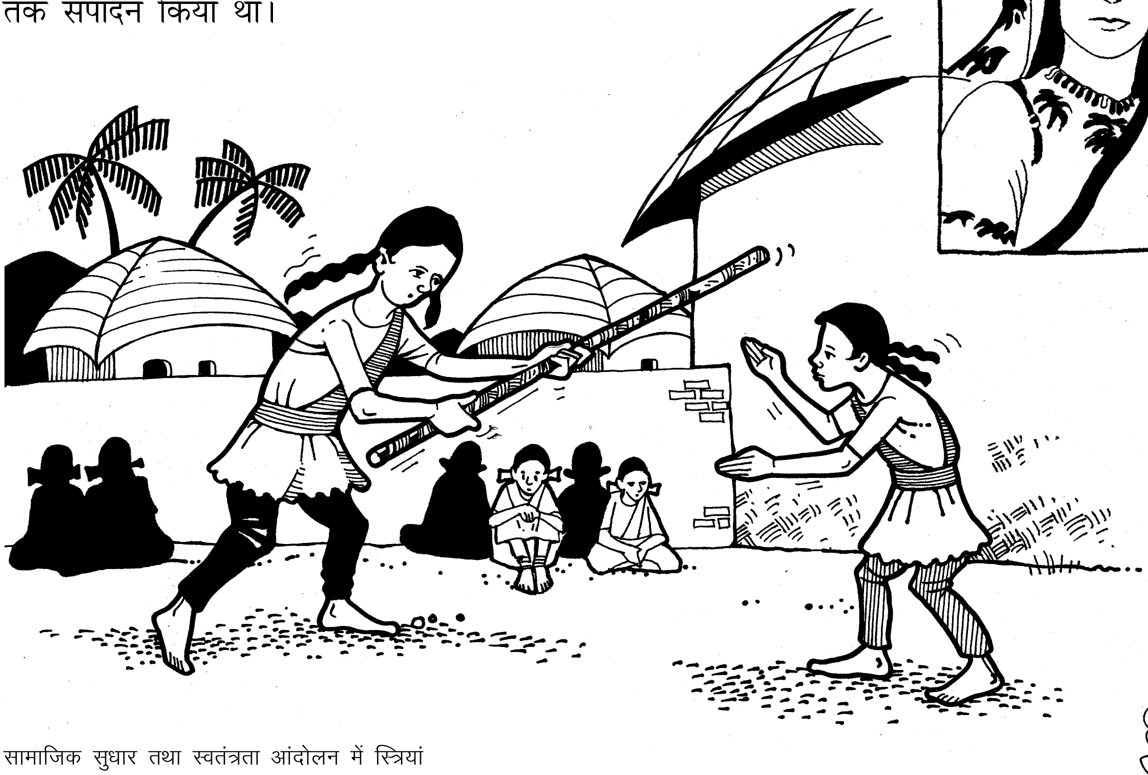

फरजाना: देशभक्ति के गीत प्रचलित करने वाली और औरतों के खुद के एसोसियेशन की शुरूआत करने वाली इस महिला की बात सुनकर बहुत आनंद मिला।

एकता: भारत में महिलाओं की संस्था स्थापित करने में आयरलैंड की दो महिलाओं की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण रही। उनमें से एक हैं **ऐनी बीसेंट**। वे 1893 में भारत आईं और मद्रास में थियोसोफिकल सोसाइटी के साथ जुड़ीं। वे कहती थीं कि 'जब तक पुरुष के अधिकार (Man's Rights) मानवाधिकार (Human Rights) न बनें तब तक समाज कभी भी न्याय की ठोस नींव पर स्थापित नहीं होगा... या तो सभी मनुष्यों को समान अधिकार है अथवा किसी को नहीं...' अंग्रेज़ - साम्राज्यवाद की प्रखर विरोधी ऐनी बीसेंट भारतीय स्वाधीनता संग्राम की महत्त्वपूर्ण नेता बनीं। 1916 में उन्होंने होमरूल लीग की स्थापना में भूमिका निभाई। 1917 के कलकत्ता अधिवेशन में वे कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष बनीं और उनके प्रभाव तले कांग्रेस ने स्त्रियों के लिए भी पुरुषों जैसे समान मताधिकार सिद्धांत को स्वीकार किया। अंग्रेज सरकार के पास मताधिकार की मांग हेतु गए शिष्टमंडल में मार्गरेट कजिन्स, सरोजिनी नायडू और अन्य आठ महिलाओं के साथ वे भी थीं।

आशा: क्या ये **मार्गरेट कजिन्स** भी कोई विदेशी महिला थी?

एकता: हां, वे भी मूल रूप से आयरलैंड की निवासी थी। ये नारीवादी महिला-1915 में भारत आईं और बाद में भारत को ही उन्होंने अपना घर बना लिया। इन्होंने **वीमेन्स इंडियन एसोसियेशन** की स्थापना की।

इस संस्था ने भारत की बालिकाओं और स्त्रियों के लिए कैसी शिक्षा होनी चाहिए, इस मांग को अंग्रेज़ सरकार तक एक आवाज़ में पहुंचाने के लिए एक राष्ट्रीय परिषद आमंत्रित करने का निश्चय किया। इसके लिए लगातार छः महीनो तक देश के अलग-अलग भागों में काम करने वाली संस्थाओं को पत्र लिखकर उनसे अपने-अपने गांव या शहर में स्त्रियों की मीटिंग बुलाने को कहा ताकि उसके आधार पर वे सरकार को आवेदन पत्र भेज सकें। 1927 में पूना में 2000 लोगों की उपस्थिति में

राष्ट्रीय परिषद सम्पन्न हुई। वड़ोदरा की महारानी चीमनाबाई उसकी अध्यक्षा थीं। देश के अलग-अलग 58 स्थानो से आये प्रतिनिधियों द्वारा उनके आवेदन पत्रों में स्त्रियों के लिए ऐसी शिक्षा की मांग की गई जो उन्हें अच्छी गृहिणी और माता बना सके। साथ ही ऐसी मांग भी उठी कि डॉक्टर, वकील जैसे व्यवसायों में भी स्त्रियां जाएं।

रेशमा: मतलब यह, कि अभी तक स्त्री को एक व्यक्ति के रूप में अपना विकास करने के लिए शिक्षा की ज़रूरत है, ऐसी मांग करने की जागरुकता उनमें नहीं आ पाई थी।

एकता: तुमने बिल्कुल सही समझा। इस सभा में भारत की एक महत्त्वपूर्ण महिला संस्था की स्थापना की गई, जिसका नाम '**अखिल भारतीय महिला परिषद**' रखा गया।

शुरूआत में इस संस्था का मुख्य उद्देश्य महिलाओं की शैक्षणिक समस्याओं के लिए काम करना था, पर बाद में उसने बाल-विवाह का विरोध, विवाह की सहमति हेतु स्त्री की उम्र-वृद्धि, उत्तराधिकार में महिला का भाग, पुरुष द्वारा एक से अधिक पत्नी रखने का विरोध, परिवार नियोजन आदि जैसे सवाल उठाने शुरू किये। आगे चलकर महिला कर्मचारी की समस्या, गांवों के विकास संबंधी समस्या, उद्योग, पाठ्यपुस्तकें, मीडिया में स्त्री की छवि जैसे मुद्दों पर भी चर्चा-परिचर्चा करने लगीं। आगे चलकर देश और राज्य से शुरू होकर इसकी शाखायें तेजी के साथ अलग-अलग जिलों-तहसीलों में भी फैलने लगी। अलग-अलग दल की अलग-अलग विचारों की स्त्रियां इस संस्था में एक साथ काम करती थीं। यह संस्था भारत की स्त्रियों की प्रतिनिधि जैसी बन गई।

कमला: तो क्या वे भारत की स्वतंत्रता के संग्राम के साथ नहीं जुड़े?

एकता: शुरूआत में इस संस्था ने राजनीति से अलग रहने का विचार किया था, लेकिन जैसे-जैसे स्वाधीनता का संग्राम जोर पकड़ता गया, वैसे-वैसे इस संस्था में राजनीतिक मुद्दों पर भी चर्चा होने लगी।

अखिल भारतीय महिला परिषद की बहुत सी नेत्रियां आजादी के आंदोलन की भी नेता थीं। सरोजनी नायडू, रामेश्वरी नेहरु, विजयलक्ष्मी पंडित, कमला देवी चट्टोपाध्याय, राजकुमारी

अमृतकौर, मुथुलक्ष्मी रेड्डी, लक्ष्मी मेनन, रेणुका रे और मासूमा बेगम जैसी राष्ट्रवादी स्त्रियों ने इस संस्था की अगुवा 'अध्यक्ष' के रूप में काम किया था।

इनमें से कई महिलाओं के बारे में हम बाद में बात करेंगे।

स्वाधीनता संग्राम में महिलाएँ

एकता: बीसवीं सदी में स्वतंत्रता हेतु संघर्ष और तेज़ हो गया। दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद के विरुद्ध आंदोलन करने का अनुभव लेकर गांधीजी ने भारत आने के बाद स्वाधीनता आंदोलन में अहिंसक सत्याग्रह की नीति अपनाई। सत्याग्रह आंदोलन में सभी वर्गों की महिलाएँ शामिल हुईं।

कमला: "सत्याग्रह" रणनीति की प्रेरणा गांधीजी को कस्तूरबा से ही मिली थी ना?

शकरी: कैसे?

एकता: कस्तूरबा का 13 वर्ष की उम्र में गांधीजी के साथ विवाह हुआ था। युवावस्था में गांधीजी अपनी पत्नी पर प्रभुत्व जमाने की कोशिश करते थे, परंतु कस्तूरबा उनके वश में नहीं रहती थीं। कस्तूरबा की सोच थी कि मंदिर जाने या पीहर जाने के लिए पति की इजाजत लेने की जरूरत नहीं हैं। गांधीजी काफी गुस्सा करते थे पर वे उनसे उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नहीं करवा सके। कस्तूरबा के दृढ़ विरोध से गांधीजी को आजादी की लड़ाई में 'सत्याग्रह' की पद्धति अमल में लाने की प्रेरणा मिली थी।

कस्तूरबा गांधी
(1869 - 1944)

गांधीजी ने दक्षिण अफ्रीका में आश्रम स्थापित करके स्वैच्छिक गरीबी स्वीकार की और अनेक प्रयोग किये। इन तमाम प्रयोगों में कस्तूरबा उनके साथ रहीं और जेल भी गईं। भारत आने के बाद कोचरब और साबरमती आश्रम में वे अनेक अंतःवासियों की 'बा' बनीं। वे हरेक काम बड़ी सहजता से करतीं। उनके वक्तव्य बहुत संक्षिप्त और स्पष्ट होते, जो सहज ही हृदय के आरपार उतर जाते थे। मोहनदास गांधी से 'महात्मा गांधी' के रूप में विकास में कस्तूरबा की भूमिका अमूल्य थी।

फरजाना: फिर भी हम गांधीजी के बारे में जितना सुनते हैं उतना कस्तूरबा के बारे में सुनाई नहीं देता।

एकता: जैसा कि मैंने कहा, आज़ादी की लड़ाई में लाखों स्त्रियां शामिल हुई थीं। उन तमाम स्त्रियों के नाम इतिहास में कहीं दर्ज नहीं हैं। आओ, उनमें से कुछ जानी-मानी महिलाओं की बात करें। इस लड़ाई में कपूरथला राज परिवार की राजकुमारी अमृतकौर जैसी स्त्रियों ने भाग लिया। सरोजनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय जैसी विलक्षण महिलाओं ने अपनी प्रतिभा दर्शाई, तो दक्षिण गुजरात के आदिवासी अंचल की दशरीबहन कानजीभाई ने भी उतना ही महत्त्वपूर्ण योगदान दिया और सात बहनों के रूप में पहचाने जाने वाले असम, मणिपुर, नागालैंड जैसे उत्तर पूर्वी राज्यों की स्त्रियां भी इसमें पीछे नहीं रही थीं। उनकी चर्चा संक्षेप में करते हैं।

सरोजिनी नायडू 1876-1949

सरोजिनी नायडू को 'भारत कोकिला' की उपाधि मिली हुई थी। वे बहुत उच्च श्रेणी की कवयित्रि, तेजस्वी वक्ता और लोकप्रिय नेता थीं। साथ ही वे कुशल प्रशासिका भी थीं।

वे अल्पायु में ही आजादी के संघर्ष से जुड़ गई थीं। स्वतंत्रता की लड़ाई के साथ-साथ विधवा पुनर्विवाह और महिला मताधिकार के लिए भी उन्होंने निरंतर अभियान चलाया था। स्त्री-मताधिकार के लिए देशभर में घूम-घूम कर जागृति फैलाने में उनका बहुत योगदान था। स्त्री-मताधिकार के लिए उन्होंने इंगलैंड में प्रदर्शन किये। इन्होंने काँग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के साथ काम किया और हिन्दू-मुसलमान एकता के लिए सक्रिय रहीं।

कमला देवी चट्टोपाध्याय 1903-1990

कमला देवी बारह वर्ष की कम उम्र में विधवा हो गई थीं। इस तरह कम उम्र में ही सामाजिक असमानता का अनुभव कर वे एक स्वतंत्र चेतना सम्पन्न व्यक्ति बनी थीं। उसके बाद उनका कलाकार मन कलाकार - संगीतकार हरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय के प्रति आकृष्ट हुआ और सगे-संबंधियों के विरोध के

बावजूद उन्होंने हरेन्द्रनाथ से विवाह किया। बारह वर्षों के वैवाहिक जीवन के पश्चात् यह संबंध तलाक में परिणत हुआ। वे आजादी की लड़ाई से जुड़ गईं। 1926 में उन्होंने मैंगलोर से चुनाव लड़ा। चुनाव लड़ने वाली वे भारत की प्रथम महिला बनीं। इस चुनाव में उनके प्रचार का काम आयरलैंड की क्रांतिकारी महिला मार्गरेट कजिन्स ने संभाला था। बहुत कम मतों से वे चुनाव हार गईं।

भारत में सर्वप्रथम राष्ट्रीय स्तर के महिला संगठन अखिल 'भारतीय महिला परिषद' की स्थापना करने वाले संस्थापक सदस्यों में से वे भी एक थीं।

1930 में उन्होंने अपना सम्पूर्ण ध्यान असहयोग आंदोलन की तरफ लगा दिया। मुंबई में 'नमक सत्याग्रह' का आयोजन करने का दायित्व उन्हें सौंपा गया था। अन्य स्थानों पर नमक कानून तोड़ने वाले समूह छोटे थे, परंतु मुंबई में कमला देवी ने ऐसा आयोजन किया कि बहुत बड़ी तादाद में लोग शामिल हों - ऐसा विशाल आयोजन जिसके सामने मशीन गनें भी शांत हो जाएं। सत्याग्रह की पूर्व संध्या को ही उन्हें पकड़ लिया गया, परंतु अलग होते समय उन्होंने साथियों से कहा कि सारा काम योजना के अनुसार ही होना चाहिए। उनका सात वर्ष का बेटा भी इस सत्याग्रह में शामिल था। जब गिरफ्तारी के बाद कमला देवी को कोर्ट में ले जाया गया तो उन्होंने न्यायाधीश से भी अंग्रेज सरकार की नौकरी छोड़कर सत्याग्रह में शामिल होने की अपील की। उन्हें नौ माह की जेल की सजा हुई थी।

युवाओं को प्रशिक्षण देकर तैयार करने वाले संगठन 'राष्ट्रीय सेवा दल' में उनकी भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय रही। वे सेवा दल की महिला शाखा की कमांडर रह चुकी थीं। 1942 में 'भारत छोड़ो' आंदोलन में भी उन्होंने अग्रणी भूमिका निभाई और गिरफ्तार की गईं।

आजादी के बाद कोई भी सरकारी पद स्वीकार करने के बजाय उन्होंने हस्तकला और हैंडलूम के विकास का काम किया। 'ऑल इंडिया हैंडलूम बोर्ड' का अध्यक्ष होने के नाते उन्होंने देश के कोने-कोने के कलाकारों व कारीगरों को प्रोत्साहन दिया, उनकी कला को गांव के झोंपड़े से उठाकर विश्व के विशाल बाजार में पहुंचाया और लाखों कारीगरों को रोजी-रोटी दिलाने का काम किया।

कारीगर प्रेम से उन्हें 'हस्तकला मां' के नाम से पुकारते थे। 'वर्ल्ड क्राफ्ट कौंसिल' के उपाध्यक्ष के नाते उन्होंने न्यूयार्क में भी अपनी सेवाएं दीं। उन्हें विश्वविख्यात मैगसेसे पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

अरुणा आसफअली 1906-1996

अरुणा बचपन से ही विद्रोही विचारों की थीं। अंग्रेजी साहित्य में उनकी विशेष रुचि थी। इलाहाबाद में अपने बहन-बहनोई के घर पर, उनके मित्र आसफअली से मुलाकात हुई। आसफअली एक सफल वकील और कांग्रेस के नेता थे। अंग्रेजी साहित्य में समान रुचि की वजह से वे दोनों परस्पर पास आये और अनेक विरोधों के बीच अंतरधर्मीय विवाह किया।

नमक सत्याग्रह में आसफअली की गिरफ्तारी होने के बाद अरुणाजी भी सत्याग्रह से जुड़ गईं। उनकी गिरफ्तारी हुई तो जज ने उनसे कहा कि 'अच्छा बर्ताव' करने का भरोसा दिलाओ। अरुणाजी ने ऐसा भरोसा देने से इंकार कर दिया और उन्हें लाहौर की जेल में भेज दिया गया। एक वर्ष तक वे जेल में रहीं। 1932 में उनको जब फिर से गिरफ्तार किया गया, तो दिल्ली की जेल में उन्होंने महिला-कैदियों का संगठन बनाया।

भारत छोड़ो आंदोलन शुरू होने से पहले ही 1942 में मुंबई में पुलिस ने सभी नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस का ऐसा मानना था कि यदि सभी मुख्य

नेता जेल में हों तो आंदोलन नहीं होगा, परंतु अरुणा तय शुदा कार्यक्रम के अनुसार मुम्बई के गोवालिया टैंक मैदान में जा पहुंचीं और निर्धारित कार्यक्रम के मुताबिक उन्होंने ठीक समय पर झंडा फहरा दिया। पुलिस ने लोगों की विशाल भीड़ को बिखेरने के लिए निर्दयता से लाठीचार्ज किया और आंसू गैस के गोले छोड़े। तब भी भीड़ नहीं हटी और अरुणाजी की अगुआई में भीड़ जुलूस के रूप में कांग्रेस हाउस की तरफ निकल पड़ी।

पुलिस उन्हें गिरफ्तार करना चाहती थी, परंतु वे पुलिस को चकमा देकर छिपती रहीं और कार्यकर्ताओं को संगठित करती रहीं। 1946 तक वे इसी तरह एक जगह से दूसरी जगह, एक गांव से दूसरे गांव भागती छिपती रहीं। जब उनके खिलाफ वारंट रद्द हुआ, तभी वे सामने आईं।

आजादी के पश्चात, आसफअली को स्वतंत्र भारत का राजदूत बनकर जब वाशिंग्टन जाना पड़ा, तब अरुणाजी ने कहा कि जब मेरी माँ (भारत देश) बीमार है, तो मैं उसे छोड़कर विदेश नहीं जाऊँगी।

उन्होंने जीवन पर्यंत स्त्रियों और युवकों के लिए काम किया। शोषितों की आवज बुलंद करने के लिए वे 'लिंक' नामक साप्ताहिक और 'पैट्रियट' नामक दैनिक के साथ जुड़ी थीं।

रानी गाइडीन्ल्यु 1915-1993

रानी गाइडीन्ल्यु ने नागालैंड के उत्तर में स्थित कचार पहाड़ी के आदिवासियों के साथ मिलकर असहयोग आंदोलन चलाया था। तेरह वर्ष की उम्र में ये स्वाधीनता संग्राम से जुड़ी थीं। इनके चचेरे भाई ने 1925 में मणिपुरी जनता को सत्याग्रह से जोड़ना शुरू किया था, जिस कारण अंग्रेजों ने उन्हें फांसी की सजा दी। गाइडीन्ल्यु ने उनका स्थान लेकर संघर्ष को आगे बढ़ाया और उत्तर कचार के पर्वतीय प्रदेशों में चली गईं, जहां 1931-32 में कर न देने का संघर्ष छेड़ा। अंग्रेजों ने उन्हें पकड़ने के लिए बहुत प्रयास किये और तरह-तरह के दांवपेच चलाये परंतु वे अपने साथियों के साथ जंगल में छिपती रहीं। महीनों तक अंग्रेज पुलिस को वे अपने पीछे दौड़ाती रहीं। अंत में वे गिरफ्तार हुई और उन्हें जेल की सजा दी गई।

दशरी बहन कानजीभाई 1919–

दक्षिण गुजरात के आदिवासी अंचल की निवासी दशरी बहन 10 वर्ष की अल्पायु से ही बारडोली सत्याग्रह से जुड़ गई थीं। 1928 में सरदार पटेल के सुझाव के मुताबिक उन्होंने महिलाओं की टुकड़ियां बनाईं और गांव-गांव घूमकर लोगों को कर न देने के लिए समझाया। उस समय पुलिस कर जमा न कराने वालों और जमा न कराने का प्रचार करने वालों की बहुत पिटाई करती थी। उसके बाद दशरी बहन ने दारू के ठेकों पर धरना भी दिया।

1933 में छः महिलाओं की एक टीम सूरत में विदेशी वस्त्रों का विरोध करने गई। उस टीम में दशरी बहन सबसे छोटी थीं, सिर्फ 15 वर्ष की। इस टीम ने बाजार में जाकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाई और नारे लगाने शुरू किये। थोड़ी ही देर में लोगों की भीड़ जमा हो गई। दुकानदार घबरा गये। उन्होंने पुलिस बुला ली। पुलिस उनको पकड़कर ले गई और जज के सामने खड़ा कर दिया। जब जज ने उनसे नाम पूछा तो उन्होंने गलत नाम बताया। पता पूछा तो कहा कि हम भारत से आये हैं। चूंकि राष्ट्रीय आंदोलन के लिए हम हर जगह घूमते रहते हैं, इसलिए हमारा कोई स्थायी पता नहीं है। अगर सही पता बता दें तो पुलिस उनके माता-पिता को परेशान करती, उनको दंडित करती। उन्होंने अपनी उम्र भी 15 वर्ष नहीं बताई। साड़ी पहनने के कारण पुलिस ने उनकी उम्र 18 वर्ष मान ली।

जज ने कहा कि तुम माफी मांगो तो तुम्हे छोड़ देंगे, पर दशरी बहन ने माफी मांगने से इनकार कर दिया। उन्हें 1 वर्ष की जेल की सजा हुई। पहले उनको साबरमती और फिर पूना की यरवदा जेल ले जाया गया। वहां वे सरोजिनी नायडू और कस्तूरबा के साथ रहीं। दशरी बहन पांचवी पास थीं। उन्होंने यरवदा जेल में कस्तूरबा को पढ़ना लिखना सिखाया।

दशरी बहन जैसी अनेक महिलाएँ अपने बलिदान की लंबी-चौड़ी बातें करने के बजाय आज भी चुपचाप रचनात्मक काम में लगी हुई हैं। वे हमारी स्वतंत्रता के भवन की आधार शिला हैं।

सोफिया खान 1916-1961

उदारवादी परिवार में पली-बढ़ी 15 वर्षीया सोफिया ने कमला देवी, हंसा मेहता, लीलावती मुंशी जैसी स्त्रियों को नमक सत्याग्रह में भाग लेते देखा था। इनकी बहादुरी व हिम्मत से आकर्षित होकर सोफिया बहन भी कांग्रेस से जुड़ गईं। कांग्रेस सेवादल के महिला विभाग से जुड़कर इन्होंने नेतृत्व संभाला। सेवादल के नेता के रूप में उन्होंने युवतियों को शारीरिक शिक्षण, आत्मनिर्भरता और देश प्रेम का प्रशिक्षण दिया।

1942 में भारत छोड़ो सत्याग्रह में राष्ट्रीय नेताओं के साथ गिरफ्तार होकर यरवदा जेल गईं। जेल में गांधीवादी, साम्यवादी, गरम-नरम, अलग-अलग विचारधाराओं वाले स्वतंत्रता सेनानियों के बीच वे समन्वयक बनती थीं। जेल के अधिकारियों और कैदियों के बीच भी वे समन्वयक बन जातीं, परंतु जेलर के जुल्मों के खिलाफ उन्होंने दृढ़तापूर्वक सत्याग्रह किया।

नीरू: इतनी सारी महिलाओं ने आज़ादी की लड़ाई में भाग लिया था!

एकता: ऐसी लाखों स्त्रियों के योगदान और बलिदान से आज़ादी मिली है। उन्होंने भारत की स्वतंत्रता के लिए अंग्रेज़ सरकार के ज़ुल्म सहन किये, लाठी-गोली खाने से लेकर जेल की सलाखों के पीछे जीवन बिताया।

नीरू: लेकिन इतनी सारी स्त्रीयां आझादी की लडाई में बाहर नीकली तो उनके घरवालोने विरोध नहीं किया?

कमला: यह पितृसत्तात्मक समाज...इसने सार्वजनिक राजनैतिक जीवन में स्त्रियों को आसानी से कैसे स्वीकार कर लिया?

एकता: यह काफी महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। परिवार व समाज का विरोध तो उस समय भी स्त्रियों को सहन करना पड़ा था। परंतु कुछ रणनीति एवं विचारधार के कारण यह थोड़ा आसान बना था।

रेशमा: कैसी विचारधारा?

एकता: उस समय ऐसा वातावरण तैयार किया गया था कि आजादी की लड़ाई कोई राजनैतिक प्रवृत्ति नहीं है, परंतु भारत माता की मुक्ति के लिए धर्मयुद्ध है। उसमें बलिदान देना सबका कर्तव्य है। नेताओं को भी ये समज में आया था कि जब तक स्त्रियों का समर्थन नहीं मिलेगा तब तक पुरुष भी पूरा योगदान नहीं दे पायेंगे।

फरजाना: सच्ची बात।

एकता: इसके अतिरिक्त, गांधीजी ने नेतृत्व लेकर सत्याग्रह की नीति अपनाई जिसमें स्त्रियों के परंपरागत गुणों का सकारात्मक उपयोग किया।

आशा: अर्थात्

एकता: अहिंसक सत्याग्रह के लिए जरूरी सहनशीलता, नम्रता, पीड़ा सहन करने की तैयारी आदि परंपरागत रूप से स्त्रियों के गुण माने जाते हैं जिनके कारण उनकी खास भूमिका तैयार हुई। उन्होंने स्त्रियों को खादी, शराबबंदी एवं अन्य रचनात्मक कामों में लगाकर पुरुषों से अलग भूमिका में सक्रिय किया। आम स्त्रियों को सक्रिय कार्यकर्ता के रूप में काम व महत्व मिला, लेकिन उन रूढ़ी परंपरागत भूमिकाओं एवं पितृसत्तात्मक ढांचे को आंच न आए इस तरह से। इस कारण से स्त्रियों की सार्वजनिक प्रवृत्तियों को तुलनात्मक रूप से आसानी से स्वीकृति मिली और अनेक स्त्रियों ने आजादी की लड़ाई में योगदान दिया।

आशा: साधारणतया तो यही कहा जाता है कि गांधीजी ने हमें आज़ादी दिलाई है।

एकता: भारत की आज़ादी की लड़ाई में गांधीजी की भूमिका बहुत महत्त्वपूर्ण थी यह सही है, पर देश के सभी वर्ग, धर्म और प्रदेश के साधारण स्त्री-पुरुषों का योगदान भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है। सत्याग्रह आंदोलन के अलावा देश में शस्त्रों से लड़ने वाले क्रांतिकारियों का भी योगदान भूलना नहीं चाहिए।

रेशमा: हमने भगत सिंह, चंद्र शेखर आज़ाद जैसे क्रांतिकारी योद्धाओं के बारे में सुना है, तो क्या उनके साथ भी महिलाएँ जुड़ी हुई थीं?

एकता: हां, लेकिन इनके बारे में हम अगली बार बात करेंगे। आज की चर्चा का अंत कौनसे गाने से करें?

नीरू: आज तो मैं सत्याग्रह की लड़ाई में प्रसिद्ध हुआ एक गाना गाऊँगी। जब मैं छोटी थी, मेरी मौसी ने मुझे सिखाया था। कहती थीं कि प्रातः फेरी में ये गाना औरतें गाती थीं।

डंका लगा

डंका बजा सैनिक शूरवीर जागना रे
शूरवीर जागना रे, कायर भागना रे...
सर के बदले प्रतिज्ञा सच्ची निभाना रे
सच्ची निभाना रे, सच्ची निभाना रे...
तोड़ डालो सरकारी जुलमी कानूने रे
जुलमी कानूने रे,जुलमी कानूने रे...
भारत मुक्ति के लिए तन को होमना रे
तन को होमना रे, तनको होमना रे...
डंका बजा भारत की बहनें जागना रे
बहनें जागना रे, बहनें जागना रे...

- *फूलचंदभाई शाह*

(गुजराती से अनुवादित)

क्रांतिकारी ओरते

एकताः भारत की स्वतंत्रता के लिए हाथ में बंदूक और हथगोले लेकर हंसते-हंसते मौत को गले लगाने में भी स्त्रियाँ शामिल थीं। उनकी बहादुरी और आजादी हेतु बलिदान देने की तमन्ना हृदय को झकझोर देती है। आओ, इन स्त्रियों के कुछ उदाहरण देखें।

शुरूआती क्रांतिकारियों में मैडम भीखाईजी कामा का नाम याद आता है, जिन्होंने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय कांफ्रेंस में भारत का झंडा लहराया था।

मैडम कामा 1861-1936

मैडम कामा के नाम से परिचित भीखाईजी कामा समृद्ध परिवार से थीं। दादाभाई नौरोजी से उन्होंने स्वतंत्रता की प्रेरणा प्राप्त की। बाद में वे क्रांतिकारी आंदोलन से जुड़ गईं। वे 'अभिनव भारत' नामक गुप्त सोसाइटी के पीछे प्रेरक बल के रूप में काम करती थीं। उन्होंने युवकों को बम बनाने का प्रशिक्षण दिया। वे खिलौनों में छिपाकर क्रिसमस गिफ्ट के रूप में भारत में रिवॉल्वर भेजती थीं। विदेश में रहते हुए अपने देशबंधुओं को वे ब्रिटिशरों के खिलाफ लड़ने की प्रेरणा देती थीं। ब्रिटिशरों के उकसाये जाने पर उन्हें फ्रेंच जेल में डाल दिया गया था। अंग्रेज सरकार ने उन्हें भारत आने की इजाजत नहीं दी थी। 74 वर्ष की उम्र में जब वे बहुत बीमार हो गईं, तब उन्हें भारत लौटने की अनुमति मिली। 1907 में उन्होंने स्टटगार्ट नामक शहर में सोश्यालिस्ट कांग्रेस में भाग लिया। इस अधिवेशन में सभी देशों के लोग अपने अपने राष्ट्रध्वज लेकर आये थे। यह

देखकर मैडम कामा तत्काल अपने कमरे में गईं और अपनी साड़ियों में से तिरंगा राष्ट्रध्वज बनाया। इस तरह यूरोप की सोशलिस्ट कांग्रेस में उन्होंने भारतीय ध्वज का नमूना फहराया था।

एकता: 1930 के दशक में फिर से एक बार क्रांतिकारी प्रवृत्तियों में ज्वार आया और अनेक किशोरियां-युवतियां उसमें जुड़ीं। शुरू में वे शस्त्र छिपाने में सहयोगी के रूप में जुड़ीं और फिर मुख्य प्रवृत्तियों में भी सम्मिलित हो गईं। आइए, उनमें से कुछेक के बारे में संक्षेप में चर्चा करें।

बीना दास 1911-1966

1922 में बंगाल के गवर्नर स्टेनली जैक्शन जब कलकत्ता युनिवर्सिटी के सीनेट हॉल में कन्वोकेशन भाषण दे रहे थे तब बीना दास ने उन पर गोली चला दी। कमला दासगुप्ता नामक अन्य क्रांतिकारी युवती की मदद से उन्होंने पिस्तौल प्राप्त की थी।

यह उनकी अपनी ही योजना थी। चटगांव में हथियार लूटने के मामले में जिस तरह जांच का विवरण प्रकाशित किये बगैर क्रांतिकारियों को सजा दी गई थी, उससे वे बहुत दुखी थी। उसमें अंबा, निहारबाला जैसी युवतियों को भी सजा हुई थी और उनकी बहन कल्याणी को बिना किसी सबूत के कड़ी सजा हुई थी। अतः ऐसी गुलामी की दशा में जीने के बजाय बीना को मौत ज्यादा अच्छी लगती थी। गोली चलाने के बाद उन्होंने शांति से गिरफ्तारी स्वीकार की। गिरफ्तारी के बाद अपने बयान में उन्होंने कहा था कि 'मैं बराबर सोचती रहती हूं कि विदेशी शासन के जुल्म से त्रस्त भारत में जीना उचित है अथवा उसका हर दर्जे का विरोध करके मौत को गले लगा लेना श्रेयष्कर है? क्या भारत की एक पुत्री और इंग्लैंड के एक पुत्र की मृत्यु से ऐसा नहीं हो सकता कि भारत अपनी पराधीन मनोदशा से बहार आये और इंग्लैंड अपनी असमानता वाली न्याय प्रक्रिया के बारे में विचार करने लगे?' बीना दास को इस अपराध के लिए ९ वर्ष की सख्त कैद की सजा हुई।

शांति घोष और सुनीति चौधरी

शांति घोष और सुनीति चौधरी नामक लड़कियों ने 1931 में टीपर के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट पर गोली चलाई। अच्छे परिवारों की लड़कियां शंका से परे थीं, अतः वे नजदीक जाकर मजिस्ट्रेट पर गोली चला सकीं। सत्ता पर बैठे विदेशियों द्वारा वे अपने देशवासियों के शोषण को सहन नहीं कर सकीं। अतः उन्होंने सोचा कि अगर हम ऐसे एक दुष्ट अधिकारी को सजा देंगी तो उन्हें सबक मिलेगा। गोली चलाने के कारण उन्हें आजीवन कारावास की सजा मिली, जिसे उन्होंने हंसते-हंसते स्वीकार किया।

प्रीतिलता वाडेदर 1911-1932

प्रीति के घर में हमेशा स्वदेशी वस्तुएं ही उपयोग में ली जाती थीं। कॉलेज में राष्ट्रीय दल से जुड़कर उन्होंने लाठी व तलवार चलाना सीखा था। छुट्टियों के दौरान वे चटगांव के क्रांतिकारियों के सम्पर्क में आईं। वे बहुत निड़र, पर दयालु थीं। उनके एक प्रसंग को उनकी क्रांतिकारी मित्र कल्पना दत्ता ने लिखा है। 1930 में पूजा उत्सव की छुट्टियों में वह प्रीति के घर गई थी। सारी सहेलियां चर्चा कर रही थीं कि क्या उनमें से कोई उत्सव के अवसर पर बकरा काट सकेगी या नहीं? कल्पना ने कहा, “हां, मैं ऐसा कर सकती हूं। इसमें कोई बड़ी बात थोड़े ही है।” इस पर प्रीति ने कहा कि इसमें डरने जैसी कोई बात नहीं है, पर मैं किसी निर्दोष का शिकार नहीं कर सकती। किसी ने पूछा कि तो फिर तुम किसके लिए लड़ोगी? प्रीतिलता ने कहा कि मैं अपने प्राण देश को अर्पित करने के लिए तैयार हुई हूं, इसलिए किसी के प्राण लेने में हिचकूंगी नहीं, परंतु किसी निर्दोष, निरुपद्रवी प्राणी के प्राण नहीं ले सकती।

दो ही वर्ष बाद 1932 में प्रीतिलता ने अपनी बात सिद्ध कर दी। कलकत्ता के एक क्लब में लगभग 40 यूरोपियनों पर बम फेंकने में अगुवाई की। बम फेंकने के बाद बम के टुकड़ों से जब वे घायल हो गईं तो पुलिस के हाथों गिरफ्तार होने के बजाय, साइनाइड की गोली खाकर मौत को गले लगा लिया।

दुर्गा देवी 1907-1999

क्रांतिकारियों में '**दुर्गा भाभी**' के नाम से विख्यात दुर्गा देवी लाहौर के क्रांतिकारी भगवतीचरण की पत्नी व सहयोगी थीं।

भगतसिंह को पुलिस की नजरों से बचाकर लाहौर से बाहर ले जाने में उन्होंने मदद की थी।

कमला: हमें इस सभी औरतों के बलिदान को सलामी देनी चाहिए। इनको सलामी देने के लिए हम क्रांतिकारियों का प्रिय गाना गायेंगे।

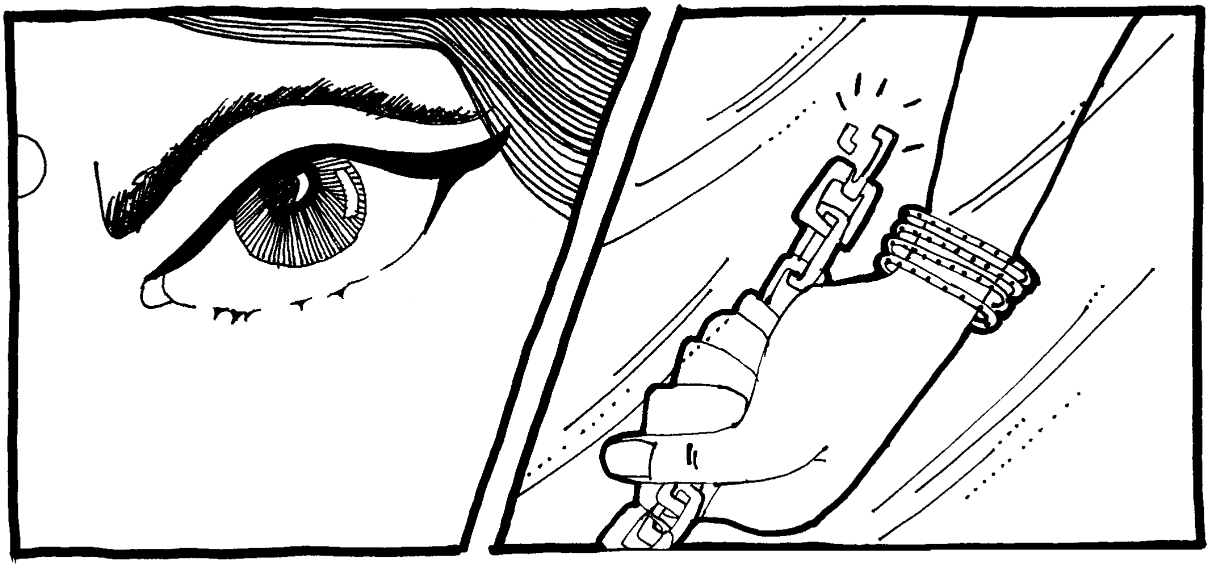

सरफरोशी	
की	
तमन्ना	सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
अब	देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है
हमारे	वक्त आने पे बता देंगे तुझे ए आसमां
दिल	क्या बताए हम जुनूने शोक किस मन्जिल में है
में है	सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

देरियां उम्मीद की ना आज हमसे छूट जायें
मिलके देखा है जिन्हें वो सपने भी ना रूठ जायें
हौंसला वो हौंसला क्या जो सितम से टूट जाये (२)
सरफरोशी की तमन्ना .....

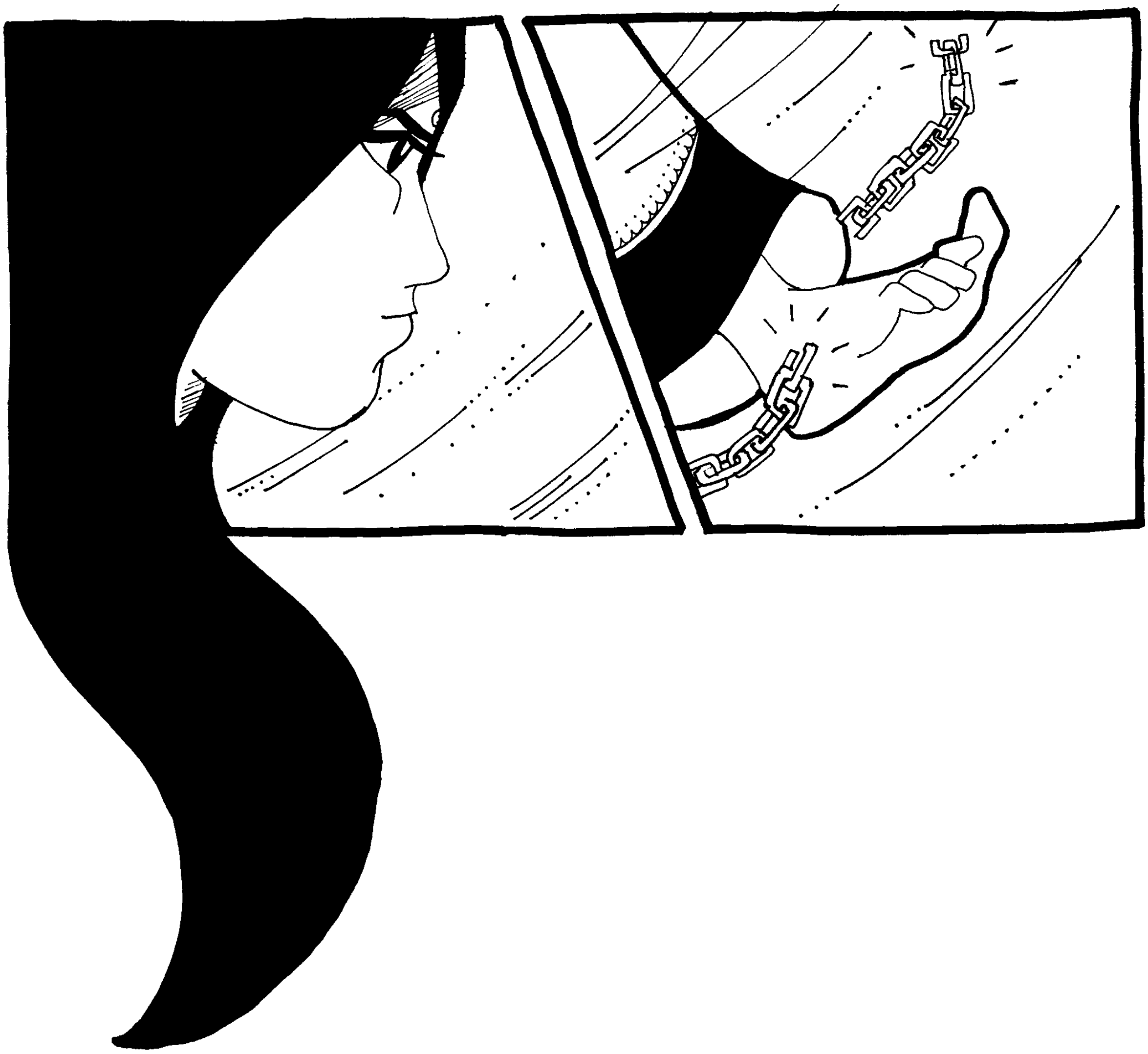

तेरे सोने रूप को हम एक नई बहार देंगे

अपने ही लहू से तेरा रंग हम निखार देंगे

देश मेरे देश तुझपे जिन्दगी भी वार देंगे (२)

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है

खूश्बु बनके महका करेंगे हम लहलहाती हर फसलो में (२)

साँस बन के गुन गुनायेंगे हम आने वाली हर नसलों में (२)

सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है

देखना है जोर कितना बाजु-ए-कातिल में है

रेशमाः मैंने सुना है कि **सुभाषचंद्र बोस** द्वारा स्थापित **आज़ाद हिंद फौज** में भी स्त्रियों की एक पलटन थी। उसके बारे में भी हमें बताइये ना!

एकताः सुभाषचंद्र बोस भी भारतीय स्वतंत्रता के महत्त्वपूर्ण योद्धा थे। अंग्रेज़ों को परास्त करने की उन्होंने एक अलग ही नीति अपनाई थी। जब भारत में आज़ादी का संघर्ष चल रहा था, उसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हुआ था। इस युद्ध में एक तरफ अंग्रेज़ थे और उनके सामने जापान व जर्मनी थे। अंग्रेज़ों की फौज में लड़ते-लड़ते अनेक भारतीय सैनिक जर्मनी या जापान की सेना द्वारा युद्ध बंदी बना लिये गये। सुभाष बाबू ने जर्मनी व जापान की सरकारों के साथ बातचीत करके उन भारतीय कैदियों को छुड़ाया और भारतीय स्वतंत्रता हेतु लड़ने वाली सेना में जुड़ने के लिए प्रेरित किया। साथ-साथ दूसरे देश प्रेमी सैनिकों के साथ मिलकर 1941 में बर्लिन में भारत की आजादी के लिए फौज की घोषणा की। 1943 में जापान में उन्होंने आजाद हिंद फौज की घोषणा की और दो नारे दिये - '**जयहिंद**' और '**तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा**'।

उन्होंने सिंगापुर में एक सभा में घोषणा की कि 1857 के स्वाधीनता संग्राम में जिस प्रकार झांसी की रानी हाथ में नंगी तलवार लेकर निकल पड़ी थीं, उसी बहादुरी से मौत के सामने जूझने वाली स्त्रियों की एक टुकड़ी मुझे चाहिए। उस सभा में उपस्थित डॉ. लक्ष्मी सहगल ने उस अपील का जबाव दिया और घर-घर घूमकर 20 बहादुर स्त्रियों की एक सैन्य टुकड़ी तैयार की। उसका नाम रखा 'रानी झांसी रेजिमेंट'। इस टुकड़ी में अपने परिवार की परंपरागत मर्यादाएं तोड़कर देश की आजादी के लिए फना होने वाली, हिन्दू-मुस्लिम आदि सारे धर्मों की स्त्रियाँ शामिल थीं। धीरे-धीरे इस रेजिमेंट में सैंकड़ों स्त्रियाँ शामिल हुई। उनमें से कइयों को बर्मा के जंगलों में सेना की प्रथम पंक्ति में लड़ने का प्रशिक्षण भी दिया गया। संयोगवश इस टुकड़ी को लड़ने का मौका मिलने से पहले ही बर्मा जापान के हाथ से निकल गया, और रेजिमेंट को बरखास्त करना पड़ा।

आशा: उनकी योजना चाहे विफल गई हो लेकिन भावना तो काबिले दाद है। क्या हम इनके लिये भी एक गाना गायेंगे?

एकता: हाँ हम आजाद हिंद फौज का विख्यात गाना गायेंगे।

'कदम कदम........ बढ़ाये जा.....'

कदम कदम बढ़ाये जा खुशी के गीत गाये जा (2)
ये जिन्दगी है कौम की तू कौम पे लुटाये जा (2)
तू शेरे हिन्द आगे बढ, मरने से फिर भी तू ना डर
उड़ा के दुश्मनों का सर, जोशे वतन बढ़ाये जा
कदम कदम....
चलो दिल्ली पुकारती हमें दिशा संभालती
लाख ये बिगड़के लहराये जा लहराये जा
कदम कदम....

स्त्रियों को क्या मिला? क्या न मिला?

मताधिकार और संविधान में समानता

रेशमा: भारतीय स्वाधीनता संग्राम में सत्याग्रह आंदोलन में, क्रांतिकारियों के भूमिगत आंदोलन में और देश की आज़ादी के लिए स्थापित फौज़ में स्त्रियों ने हर तरह से योगदान दिया था। इनकी बातें सुनके मन में गौरव की भावनायें उमड़ती हैं।

शकरी: लेकिन इसके परिणामस्वरूप स्त्रियों को क्या मिला?

आशा: मताधिकार के लिए भारतीय स्त्रियों को कैसा संघर्ष करना पड़ा?

फरजाना: उनको मत देने का अधिकार कब मिला?

एकता: 1917 में अंग्रेज़ सरकार ने राजनीतिक निर्णयों में भारतीयों की भागीदारी बढ़ाने का दस्तावेज तैयार किया, तब स्त्रियों के मताधिकार के प्रश्न पर भी चर्चा होने लगी। सरोजनी नायडू की अगुवाई में एक प्रतिनिधि मंडल मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड से मिला। इनके प्रतिनिधियों ने कहा कि जब लोगों को मताधिकार देने की बात है तो लोगों में स्त्रियाँ भी आ जाती हैं।

शकरी: सच्ची बात है। क्या स्त्रियां इस देश की निवासी नहीं हैं?

नीरू: पर क्या भारतीय पुरुषों ने स्त्रियों को मताधिकार देने के लिए हां भरी थी?

एकता: पुरुष उनका विरोध न करें, इसके लिए स्त्रियां बार-बार भरोसा दिलाती थीं कि, "हम पुरुषों के साथ स्पर्धा करने के लिए नहीं, वरन् स्त्री के रूप में समाज द्वारा निर्धारित भूमिका को प्रभावशाली रूप से निभाने के लिए ही मताधिकार की मांग कर रही हैं"। सरोजनी नायडू ने कांग्रेस के अधिवेशन में इस विषय पर प्रस्ताव रखते हुए पुरुषों को विश्वास दिलाया कि 'हम मताधिकार की माँग आपके काम में दखलंदाजी करने के लिए

नहीं कर रही हैं, वरन् हमारी ऐसी मान्यता है कि भावी पीढ़ी के निर्माण में हम इससे राष्ट्रीय भावना जगा सकेंगी।'

रेशमा: यानी फिर से कहीं 'स्त्री का काम अलग है और पुरुष का अलग' यह भेदभाव स्त्रियों ने स्वीकार कर ही लिया ना?

एकता: हाँ। इस तरह अनेक वाद-विवाद के बाद 1929 में मद्रास और मुंबई राज्यों ने और उसके बाद अन्य राज्यों ने स्त्रियों को मताधिकार व चुनाव लड़ने का अधिकार दिया। हालांकि उस समय मताधिकार पाने के लिए सम्पत्ति और शिक्षा से संबंधित कई शर्तें थीं, जिससे पूरे देश में मात्र दस लाख स्त्रियों को ही मत का अधिकार मिला था। मुथुलक्ष्मी रेड्डी मद्रास की विधान सभा में आने वाली पहली महिला बनीं। 1935 में मताधिकार के लिए शर्तें थोड़ी हल्की हुईं और स्नातक ही नहीं, किसी भी शिक्षित व्यक्ति को मत देने का अधिकार मिला। हालांकि शिक्षा और सम्पत्ति के भेदभाव के बिना भारत की सभी वयस्क महिलाओं व पुरुषों को मत देने का अधिकार भारतीय संविधान ने 1950 में दिया।

आशा: आज़ादी के साथ ही स्त्रियों को मताधिकार मिला तो और क्या-क्या मिला?

कमला: और क्या-क्या नहीं मिला, यह भी बताओ।

एकता: बिल्कुल सही है, जो मिला वह जानना जितना जरूरी है, उतना ही यह भी जानना जरूरी है कि क्या नहीं मिला। स्वतंत्रता के संघर्ष में भारत के सभी वर्ग, धर्म व जाति के स्त्री-पुरुषों ने बलिदान दिये, अतः स्वतंत्र भारत के संविधान में लिखा गया है कि 'कानून की दृष्टि में सब समान हैं'। स्त्री या पुरुष, हिन्दू या मुसलमान, दलित या सवर्ण, चाहे वे कहीं भी जन्मे हों, सबके समान अधिकार हैं। न कोई ऊंचा है न नीचा।

शकरी: क्या स्त्रियों को पुरुषों जितने तमाम अधिकार मिले?

एकता: स्त्री को मत देने का अधिकार तो मिला और नागरिक के नाते दूसरे अधिकार भी मिले, लेकिन दो महत्त्वपूर्ण मसले बाकी रहे।

नीरू: कौन-कौन से?

एकता: एक तो परिवार में समान अधिकार नहीं मिला और आर्थिक क्षेत्र में ऐसी मान्यता नहीं मिली कि वह भी एक उत्पादक व्यक्ति है, जिसके बहुत सारे परिणाम हम आज भी भुगत रहे हैं।

कमला: वो कैसे?

परिवार में असमानता

एकताः भारत में तमाम फौजदारी और दीवानी कानून हर नागरिक के लिए समान हैं, परंतु पारिवारिक कानून प्रत्येक धर्म के लिए अलग हैं।

फरजानाः पारिवारिक कानून से क्या मतलब है?

एकताः विवाह, संबंध विच्छेद, भरण-पोषण, अभिभावकत्व और दत्तक लेने का अधिकार और सम्पत्ति के अधिकार संबंधी कानूनों का समावेश पारिवारिक कानूनों में होता है।

आशाः किन-किन धर्मों के कानून अलग-अलग हैं?

एकताः हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई और पारसी पारिवारिक कानूनों के अलावा कई जातियों और आदिवासियों के परंपरागत कानूनों को भी संविधान ने मान्यता दी है।

रेशमाः मतलब यह कि स्त्री के जीवन के तमाम महत्त्वपूर्ण पहलुओं का निर्णय पारिवारिक कानूनों के द्वारा होता है।

एकताः इतना ही नहीं, तमाम धर्मों के कौटुम्बिक या पारिवारिक कानून स्त्री-पुरुष असमानता पर आधारित हैं। उनके पीछे ऐसी पूर्व

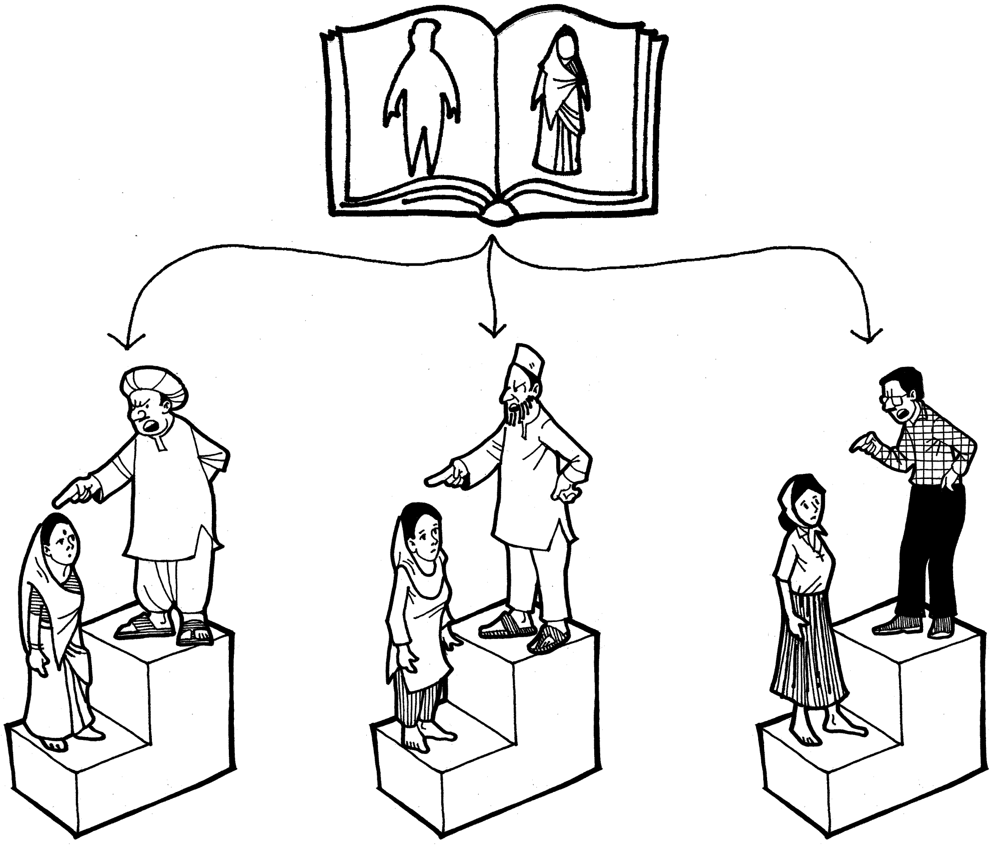

धारणायें निहित हैं कि स्त्री, पुरुष की अपेक्षा निम्न है और पुरुष पर निर्भर है। कुटुम्ब का कर्ता और बच्चों का नैसर्गिक अभिभावक (Natural Guardian) पिता है।

नीरू: पर यह तो अन्याय है।

रेशमा: इतने बड़े अन्याय के विरुद्ध आज़ादी के लिए लड़ने वाली स्त्रियां कुछ बोली नहीं?

फरजाना: और संविधान तैयार करने में स्त्रियाँ नहीं थीं?

एकता: थीं। भारत का संविधान तैयार करने के लिए संविधान सभा का गठन किया गया था। उस सभा में राजकुमारी अमृतकौर, हंसा मेहता, जैसी स्त्रियां और एम.आर. मसानी, बाबा साहेब अम्बेडकर समेत अनेक प्रगतिशील लोगों की मांगों के बावजूद बहुसंख्यक सदस्यों ने उनके विरोध को मंजूर नहीं किया।

आशा: लेकिन उस समय सरकार में कितने बड़े-बड़े नेता थे। जवाहरलाल नेहरु, सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद... क्या इन सबने उन्हें समर्थन नहीं दिया?

एकता: नहीं। तुम्हें जानकर अचरज होगा पर नेहरु और सरदार की अगुवाई वाली स्वतंत्र भारत की सरकार ने भी पूर्ववर्ती अंग्रेजी सरकारों की ही तरह अलग-अलग समुदायों के धार्मिक मामलों में दखल न देने की नीति अपनाई और नारी समानता को समर्थन देने के बजाय तमाम धर्मों के कट्टरपंथियों की बात को मान लिया। अंततः बहुसंख्यक हिन्दू समाज की स्त्रियों का परिवार में थोड़ी ज्यादा समानता मिलेगी उस आशा पर भी पानी फिर गया।

रेशमा: वह कैसे?

एकता: बहुसंख्यक हिन्दू कानून में सुधार करने के लिए 'हिन्दू कोड बिल' तैयार किया गया था लेकिन कांग्रेस के अन्दर और बाहर के रूढ़िवादियों ने हिंदू कानून में सुधार करने का निरंतर विरोध किया। उल्लेखनीय बात यह है कि आज जो हिंदूवादी समूह अल्पसंख्यकों के कानून में सुधार लाने की बात करते हैं, उन्होंने उस समय हिंदू कानून में सुधार लाने का निरंतर विरोध किया था और ऐसे लोगों के दबाव में आकर तत्कालीन प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरु ने 'हिन्दू कोड बिल' को एक तरफ रख दिया था। उसके विरोध में बाबा साहेब अंबेडकर को त्याग-पत्र देना पड़ा था।

रेशमाः बाबा साहेब अंबेडकर को तो भारतीय संविधान का रचनाकार कहा जाता है। यह तो हमें पता ही नहीं कि उन्होंने स्त्रियों के अधिकार के लिए त्याग-पत्र दिया था।

एकताः हां, आज तो शायद ही कोई यह जानता है। संविधान के निर्माता कहे जाने वाले बाबा साहेब अंबेडकर उस समय कानून मंत्री थे। संसद में प्रस्तुत किये गए 'हिंदू कोड बिल' को स्थगित कर देने के विरोध में उन्होंने कानून मंत्री के पद से त्याग-पत्र दिया था। इस त्याग-पत्र में उन्होंने लिखा था कि, "हिंदू-कानून इस देश के कानून में किया जाने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक सुधार का कदम था, वर्ग-भेद और स्त्री-पुरुष के बीच की असमानता जो हमारे हिंदू धर्म का मर्म है, उसे छुऐ बिना मात्र आर्थिक सवालों पर कानून पारित किये जाना, हमारे संविधान का मज़ाक उड़ाने और गोबर के ढेर पर महल बनाने जैसा है।"

कमलाः इतनी सच्ची बात इतनी स्पष्ट रूप से कहने के बावज़ूद उनके विरोध का सरकार पर कोई असर नहीं हुआ?

एकताः नहीं। उस समय स्वतंत्र भारत के पहले चुनाव होने वाले थे। चुनाव में बहुसंख्यक हिंदुओं का समर्थन गंवाना न पड़े इसलिए नेहरु के नेतृत्व वाली सरकार ने स्त्रियों के अधिकार की बात को स्थगित कर दिया। उसके बाद उस कानून में बहुत से संशोधन-परिवर्तन करके थोड़ा पंगु बनाकर, कुछ वर्ष बाद फुटकर रूप में पारित किया गया।

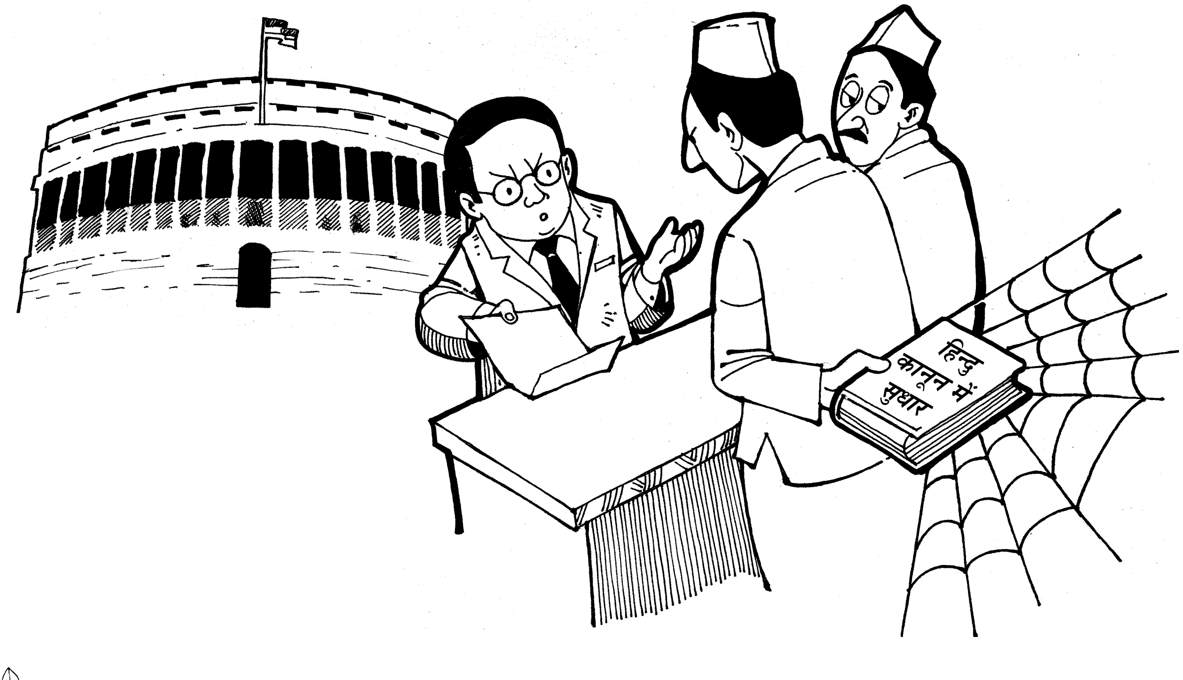

रेशमाः यह तो हुई परिवार के अधिकारों की बात। इसके अलावा एक उत्पादक के रूप में स्त्री के अधिकारों की बात भी आप बताने वाली थीं।

अर्थतंत्र में अदृश्यता

एकताः हां, वह बात भी इतनी ही महत्त्वपूर्ण है। आज़ादी मिलने से पहले ही, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने, भविष्य में भारत का विकास किस तरह से किया जाए, इसकी तैयारी के लिए नेशनल प्लानिंग कमेटी का गठन किया था।

शकरीः तो क्या उसमें स्त्रियों के विकास की बात भी थी?

एकताः हां, आज़ादी की लड़ाई में स्त्रियों के योगदान के कारण उनको नज़रअंदाज करना मुमकिन नहीं था। इसलिए उसमें एक उप समिति का काम भावी स्वतंत्र भारत के अर्थतंत्र में स्त्रियों की भूमिका संबंधी रूपरेखा तैयार करने का भी था। स्त्रियों की सामाजिक, आर्थिक एवं कानूनी परिस्थिति की जांच करके स्त्रियों के विकास में जो भी अड़चने-अवरोध हों, उनको दूर करने की नीति तैयार करना था। श्रीमती लक्ष्मीबाई रजवाड़े और मृदुला साराभाई के नेतृत्व में इस समिति ने देश भर में घूमकर जानकारियां हासिल करने की कोशिश की और स्त्रियों के आर्थिक अधिकारों संबंधी अत्यंत महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की थीं। उन्होंने कहा था कि किसी भी विकास कार्यक्रम में स्त्रियों को एक स्वतंत्र इकाई माना जाए और ऐसा न माना जाए कि परिवार में स्त्री का समावेश हो गया है। क्योंकि अगर स्त्री को परिवार के भाग के रूप में ही माना जाएगा और परिवार के विकास में ही स्त्री का विकास आ जाता है, यह मान लिया जाएगा तो स्त्री तक विकास के फल कभी नहीं पहुंचेंगे।

कमलाः बिल्कुल सच्ची बात! परिवार में खाने-पीने की बात हो या कोई अन्य सुविधा जुटाने की बात हो, उसमें से अच्छी-अच्छी वस्तुओं का बहुत बड़ा हिस्सा तो बच्चे और पुरुष ही ले जाते हैं।

आशाः और राशनकार्ड से लेकर घर की तमाम सम्पत्ति भी उनकी ही है।

नीरूः हम कुछ बोलें, तो फौरन कहा जाता है कि यह सब मेरा है। तुम कमाने थोड़े ही गई थी!

फरजाना: हम दिन-रात घर के और बच्चों के काम में लगी रहती हैं, उसकी कोई कीमत ही नहीं होती।

एकता: इस प्रतिवेदन में सबसे अधिक क्रांतिकारी सिफारिश यह थी कि 'स्त्रियाँ घर में जो बिना वेतन काम करती हैं, उनके आर्थिक मूल्य की गिनती होनी चाहिए। उसके बदले में भले ही स्त्री को वेतन न दिया जाए, पर उसे कामगार माना जाए और सरकार द्वारा कामगारों को दी जाने वाली डॉक्टरी सुविधाएं, शिशु सदन (क्रेश) सुविधाएं, शिक्षण आदि तमाम लाभ स्त्री को मिलने चाहिए। घर के काम के मुआवजे के रूप में परिवार की आय के कुछ हिस्सों पर स्त्री का सम्पूर्ण अधिकार होना चाहिए। पति की आय में हिस्सेदारी का अधिकार होना चाहिए। सरकार कर्मचारियों के हित में सामाजिक बीमे या सामाजिक सुरक्षा की जो भी योजनाएँ शुरू करे, उसमें दिया जाने वाला जरूरी अंशदान स्त्री के बदले उसके पति द्वारा दिया जाना चाहिए।

शकरी: बिल्कुल ठीक, यह तो एकदम न्याय की बात है। हम भी इसी मांग के खातिर लड़ रही हैं ना!

एकता: हाँ, इसमें दो महत्त्वपूर्ण सिद्धांत थे। पहला, स्त्री को अर्थतंत्र में एक उत्पादन करने वाले सहभागी के तौर देखा जाए, न कि किसी पर निर्भर, दुर्बल समूह के रूप में; दूसरा, स्त्री परिवार और समाज, दोनों में योगदान देती है, अतः उसे एक कामगार का दर्जा और लाभ प्रदान करने की जिम्मेदारी पति और राज्य दोनों की है।

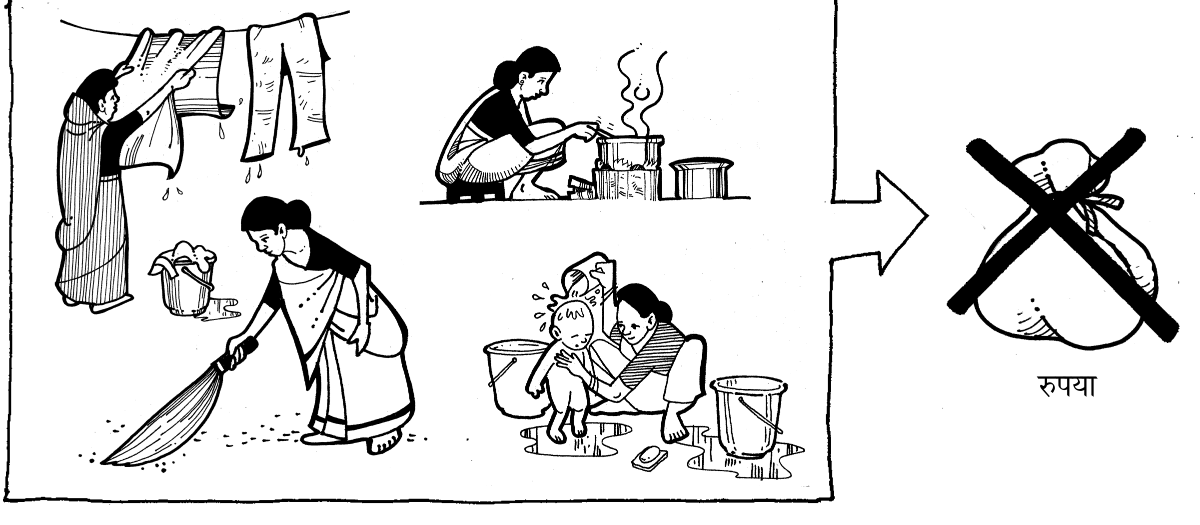

रेशमाः तो फिर इस प्रतिवेदन का क्रियान्वयन क्यों नहीं हुआ?

एकताः दुर्भाग्यवश यह प्रतिवेदन वर्षों तक इतिहास में दबा रहा। जब स्वतंत्र भारत में पंचवर्षीय योजनाएं बनाई गईं, तब इन आधार भूत सिद्धांतों को पूरी तरह से नजरंदाज कर दिया गया, और प्रथम पंचवर्षीय योजना में (1951-56) विद्यालय जाने वाले बालक-बालिकाओं के लिए पोषक आहार, मातृ एवं बाल स्वास्थ्य केन्द्र और परिवार नियोजन के कार्यक्रम बनाए गए। इसके पीछे निहित विचार ऐसा था कि 'स्त्री परिवार व समाज में अपनी भूमिका अच्छी तरह निभा सके, अतः ऐसी सेवाएं प्रदान की जाएं ताकि उसका कल्याण हो सके।

आशाः मतलब यह कि स्त्री के अधिकार को नहीं वरन् परिवार और माता के रूप में उसकी भूमिका को महत्त्व दिया गया।

एकताः इस समयावधि में जो सामुदायिक विकास कार्यक्रम हुए, उनकी इकाई परिवार रहा और मान लिया गया कि परिवार के विकास में स्त्री का विकास आ जाता है। महिला मंडलों का गठन किया गया। परंतु उसमें स्त्रियों को समाज के उत्पादक कार्मिक के रूप में नहीं, अनुत्पादक गृहिणी के रूप में एकत्रित किया गया। इसी तरह कमजोर समूह मानते हुए, उन्हें कल्याण कार्यक्रमों के टार्गेट के रूप में देखने का अभिगम पांचवी पंच वर्षीय योजना तक चालू रहा। नारी आंदोलन के मजबूत बनने के बाद, नीति में जो थोड़े बदलाव आये, उनका भी असरकारी क्रियान्वयन होना बाकी है। उसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

कमलाः लेकिन जिन स्त्रियों ने आज़ादी हेतु संघर्ष किया था, उन्होंने आज़ादी के बाद क्या किया?

एकताः उनमें से बहुत सारी स्त्रियों ने स्वतंत्र भारत के निर्माण में अलग अलग क्षेत्रों में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। कई, सरकार के साथ रहकर सरकारी योजनाओं के क्रियान्वयन में जुड़ गईं, जैसे कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने हस्तकला और हैंडलूम के विकास का काम संभाला, तो दुर्गाबाई देशमुख प्लानिंग कमीशन की सदस्य बनीं। मृदुला साराभाई और कमलाबेन पटेल जैसी महिलाओं ने जान जोखिम में डालकर भारत-पाकिस्तान विभाजन के समय दोनों पक्षों द्वारा अपहरण की गई महिलाओं के लिए काम किया।

इनके बारे में हम अगली बार बात करेंगे। आज की चर्चा की समाप्ति राजस्थान के महिला समूह द्वारा बनाये एक गाने से करेंगे। इसमें बहनों ने बताया है कि किस तरह से औरतों और उनके श्रम को अदृश्य रखा गया है।

आणा गाम फरिया वर वर...

आणा गाम फरिया वर वर पेला गाम फरिया रे,
बैरानु मोढुं कोई ना जोयु रे जी।
पित्तलना ताला खोल्यां वर वर तांबाना ताला खोल्यां रे,
बैरानु मन कोई ना खोल्यु रे जी।
घरनुं काम कर्युं वर वर खेतनुं काम कर्युं रे,
बैरानु काम कोई ना गण्यु रे जी।
आणा गाम फरिया वर वर पेला गाम फरिया रे,
बैरानु मोढुं कोई ना जोयु रे जी।
चुल्हा जलाया वर वर खाना पकाया रे,
बैराने खावा कंई ना मल्यु रे जी।
छोरा भी जण्या वर वर छोरी भी जणी रे,
बैराने जस कंई ना मल्यो रे जी।
आणा गाम फरिया वर वर पेला गाम फरिया रे,
बैरानु मोढुं कोई ना जोयु रे जी।
सरकारी काम आया वर वर कोईने फायदो थयो रे,
बैराने मालूम कांइ ना पड्यु रे जी।
आणा गाम फरिया वर वर पेला गाम फरिया रे,
बैरानु मोढुं कोई ना जोयु रे जी।
नाह्या धोया ने वर वर दुनियावारी शोभा रे,
बैरानुं मन कोई ना धोयुं रे जी।
आणा गाम फरिया वर वर पेला गाम फरिया रे,
बैरानु मोढुं कोई ना जोयु रे जी।

- राजस्थान के महिला समूह की स्त्रियों द्वारा रचित

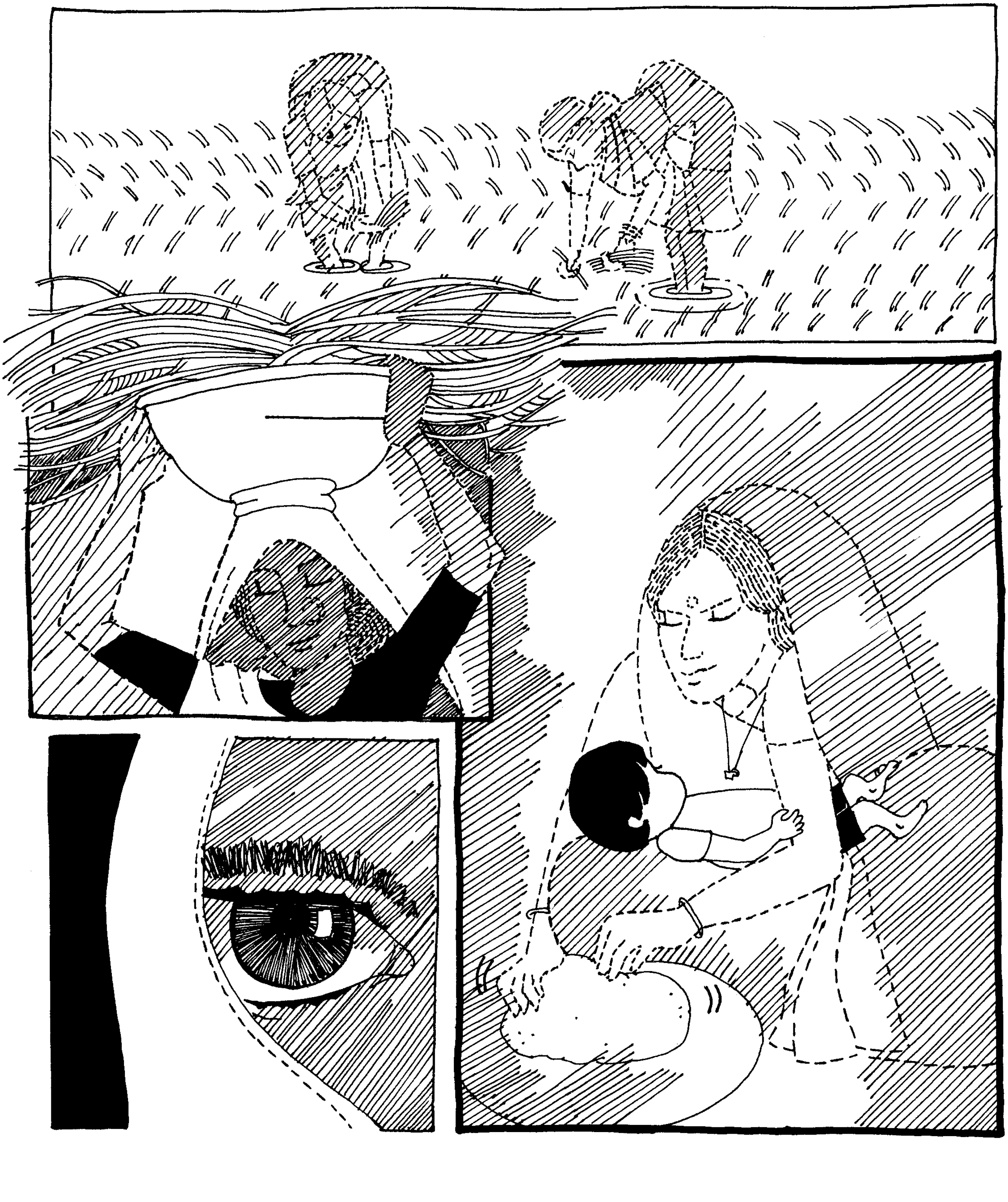

स्वतंत्र भारत के निर्माण में स्त्रियां

एकता: जैसे हमने कल बात की थी, आज हम स्वतंत्र भारत के निर्माण में जुटी कुछ औरतों के बारे में जानेंगे।

दुर्गा बाई देशमुख 1909-1981

काकीनाडा (गोदावरी जिला, आंध्र प्रदेश) के मध्यमवर्गीय परिवार में जन्मी दुर्गाबाई की निर्णय शक्ति और आत्मविश्वास गजब का था। 8 वर्ष की कम उम्र में ही उनका विवाह जमींदार के एक दत्तक पुत्र के साथ कर दिया गया था। समझ आने पर दुर्गाबाई को लगा कि यह विवाह टिकने वाला नहीं है। उन्होंने अपने पति को समझाया और उनका दूसरा विवाह कर उन्हें अपने उत्तरदायित्व से मुक्त किया।

12 वर्ष की अल्पायु में ही वे सार्वजनिक गतिविधियों से जुड़ गई थीं। जब उन्होंने एक शराबी पति को अपनी पत्नी की पिटाई करते देखा, तब अपनी सहेलियों को इकट्ठी कर गांव में जुलूस निकाला और पत्नी की मारपीट करने वाले का बहिष्कार करने की मांग की।

उस समय आंध्र प्रदेश में देवदासी प्रथा थी। गरीब दलित स्त्रियों को देवदासी रखा जाता और "उच्च जाति" के धनीमानी पुरुष उनका यौन शौषण करते थे। 1921 में जब गांधीजी काकीनाडा आये, तब दुर्गाबाई ने देवदासियों और पर्देदार मुस्लिम महिलाओं के समूह के लिए गांधीजी से मुलाकात का समय मांगा। दस मिनट के लिए दिया गया मुलाकात का समय एक घंटे तक चला और दुर्गाबाई से प्रभावित होकर गांधीजी ने अपने सम्पूर्ण प्रवास के दौरान अपने भाषणों को हिंदी से तेलुगु में भाषांतरित करने के लिए उन्हें आमंत्रण दिया।

उसके बाद तो देशभर में राष्ट्रवाद की आंधी चली और दुर्गाबाई आजादी की लड़ाई के सैनिक के रूप में जुड़ गई। वे दो बार जेल गईं। दूसरी बार के कारावास में उन्हे खूंखार अपराधियों और हत्यारों के नजदीक रखा गया। वहां के वातावरण में उनकी तबीयत बिगड़ गई। जेल से छूटने के बाद उन्होंने अपनी अधूरी पढ़ाई पूरी करने की बात सोची। जब वे स्वाधीनता संग्राम में जुड़ी थीं, तब प्रादेशिक भाषा में पांचवी पास की थी। उस उम्र में युनिवर्सिटी में दाखिल होने के लिए उन्होंने कंडेंस्ड कोर्स किया और स्नातक बनीं। तत्पश्चात् मद्रास के लॉ कॉलेज से वकालत की डिग्री प्राप्त की और फौजदारी मामलों की वकील के रूप में काम शुरू किया। उस जमाने में स्त्रियां शायद ही वकील बनतीं थी और अगर बनती भी तो फौजदारी कानून की वकालत शायद ही करतीं थीं। उन्होंने पहला केस एक विधवा स्त्री को ससुराल में सम्पत्ति का अधिकार दिलाने के लिए लड़ा और जीता। उसके बाद कभी कोई महिला उनसे कानूनी सहायता लिए बिना वापिस नहीं लौटी थी।

1946 में वे संविधान सभा की सदस्य बनीं और संविधान में लगभग 750 संशोधन सूचित किये। हिन्दू कोड बिल का कानून पास नहीं हो पाने पर वे दुःखी हुईं। उन्होंने सी.डी. देशमुख के साथ विवाह किया। जो भारत के वित्त मंत्री थे। प्लानिंग कमीशन के सदस्य के रूप में स्त्रियों के उत्त्कर्ष हेतु अनेक योजनायें बनाईं। केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना में उनका बड़ा योगदान रहा। भारत की जनसंख्या नीति और परिवार नियोजन नीति बनाने में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण था।

फरजाना: दुर्गाबाई के कारनामे जान कर उनके लिए मन में सन्मान की भावना आती है।

एकता: इसी तरह से पुष्पा बहन मेहता जैसी स्त्री ने तो सरकार में रहते हुए महिला उत्कर्ष की अनेक प्रवृत्तियों का संचालन किया।

पुष्पा बहन मेहता 1905-1988

पुष्पाबहन के पिता वन अधिकारी थे। इसलिए उन्हें ऐसे गांवों में रहना पड़ा जहां स्कूल नहीं होते थे। परंतु उनके माता-पिता ने उन्हें घर पर ही इतिहास-भूगोल और सामाजिक परिस्थिति की शिक्षा दी।

उनकी माता हेतुबा साहसी और परोपकारी स्वभाव की थीं। ससुराल के जुल्मों से त्रस्त बहुत सी स्त्रियां उनके पास आतीं। वे उनको आश्रय देतीं। बहुधा, आने वाली स्त्रियां त्रास भरे वातावरण में वापिस लौटने को तैयार नहीं होतीं, तो वे उन्हें समझा-बुझाकर वापिस भेजतीं। नन्ही पुष्पा पूछती, इनको वापिस क्यों भेजती हो? आप उन्हे यहां क्यों नहीं रख लेती? तब मां कहती कि मैं तो ऐसा कर नहीं सकती, पर अपने समय तू ऐसा जरूर करना। ऐसे प्रसंगों द्वारा उनके मन में भावी जीवन कार्य का बीजारोपण हुआ।

14 वर्ष के उम्र में शिक्षक जनार्दनराय मेहता से उनका विवाह हुआ और उनका वैवाहिक जीवन और अधूरी पढ़ाई साथ साथ शुरू हुए 25 वर्ष की उम्र में वे विधवा हो गई। उस दिन से मृत्यु पर्यंत उन्होंने सिर्फ काले कपड़े ही पहने। 1934 में वे अहमदाबाद में शिक्षिका बनीं, परंतु उसी वर्ष उनकी मुलाकात मृदुला बहन से हुई और पुष्पाबहन के जीवन की दिशा ही बदल गई। ज्योति संघ से जुड़कर उन्होंने महिलाओं की पढ़ाई के लिए कक्षाएं चलाईं।

तभी समाचार मिला कि कई बदमाश पठान कर्ज के पैसे न लौटाने पर गरीब मजदूरों की स्त्रियों को उठा ले जाते हैं। उनके सामने पुलिस भी कुछ नहीं करती। पुष्पा बहन उनकी कोठरी में जाकर स्त्रियों को छुड़ा लाईं। निडरता की यह बात हवा की तरह से फैल गई और अनेक दुःखी महिलाएं उनके पास मदद के लिए आने लगीं। उन स्त्रियों को आश्रय देने के लिए पुष्पा बहन ने 1937 में विकास गृह की स्थापना की, जहां स्त्रियों को आश्रय ही नहीं, विकास के अवसर भी मिलते। उसके बाद राजकोट, जूनागढ़ आदि सौराष्ट्र के अनेक स्थानों में उन्होंने कई संस्थाओं की स्थापना करने में पहल की।

1942 के संग्राम में विकास गृह कार्यकर्ताओं के लिए छिपकर रहने का आश्रय स्थल बन गया। 'आजादी के बाद जूनागढ़ के नवाब के पाकिस्तान के साथ जुड़ने के निर्णय के विरुद्ध स्थापित समांतर शासनतंत्र की वे अध्यक्ष बनी और जब जूनागढ़ भारत संघ के साथ जुड़ा तो उस समय हुए साम्प्रदायिक दंगों में मोहल्ले-मोहल्ले घूम कर उन्होंने लोगों को शांत किया।

पाटन में सूर्य मंदिर और मस्जिद का विवाद हुआ, तब उन्होंने रास्ता निकाला कि न यह मंदिर होगा, न मस्जिद, वरन् म्यूजियम होगा। आज भी वह स्थान म्यूजियम है।

वे सेंट्रल सोशल वैल्फेयर बोर्ड की सदस्या और उसके बाद मुंबई राज्य के और गुजरात राज्य के सोशल वैल्फेयर बोर्ड की अध्यक्ष बनीं। स्त्रियों और बच्चों के लिए कंडेंस्ड कोर्स सहित अनेक कल्याणकारी योजनाएं बनाईं। स्त्रियों की दुर्घटना मृत्यु को रोकने के लिए आपघात समिति गठित की। गर्भपात को कानूनी बनाने के लिए उन्होंने 1960 में एक निबंध तैयार किया, परंतु रूढ़िवादियों ने इस क्रांतिकारी विषय पर उन्हें विधान सभा में नहीं बोलने दिया। उन्होंने महिलाओं के नागरिक रक्षा दल का शुभारंभ किया। कच्छ के माधोपर की नागरिक रक्षा दल में प्रशिक्षित महिलाओं ने 1965 में पाकिस्तान से युद्ध के समय बम वर्षा के बीच रातोंरात हवाई पट्टी बना दी और अपने प्रशिक्षण की सार्थकता सिद्ध की। 1987 में, देहावसान तक वे महिलाओं के कल्याण के लिए इसी तरह अपनी सेवा प्रदान करती रहीं।

नीरू: पुष्पा बहन का काम औरत को अबला समझने वाले समाज को सही जवाब देने वाला है

एकता: देश का प्रशासन चलाने में महिलाओं ने जिस तरह से भाग लिया, उसी तरह देश के श्रमजीवियों, मजदूरों की समस्याओं को उठाने में भी कई महिलाएं सहभागी बनीं। उनमें से हम दो महिलाओं की बात करेंगे। यहाँ मुंबई में मणिबेन कारा और अहमदाबाद में अनसूयाबेन साराभाई का स्मरण करना जरूरी है।

मणि बहन कारा 1905-1979

मुंबई के प्रगतिशील परिवार में जन्मी मणिबहन कारा पढ़ाई के दौरान ही सामाजिक कार्यों से जुड़ गईं। उन्होंने तारदेव और भायखला अंचल में अपना सामाजिक कार्य शुरू किया। अध्ययन के लिए उन्हें इंग्लैंड भेजा गया, जहां समाज विज्ञान का अध्ययन कर वे भारत लौटीं। आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होने के लिए उन्होंने वापिस आकर प्रिंटिंग प्रेस शुरू किया। प्रेस का काम करते करते वे एम.एन.राय और भारत में मजदूर आंदोलन के संस्थापक माने जाने वाले एन.एम. जोशी के संपर्क में आईं और मजदूर आंदोलन से जुड़ गईं। उनकी मान्यता थी कि मजदूर संगठन, कर्मचारियों के लिए मात्र आर्थिक मांगें उठाने का ही साधन नहीं, अपितु उनका श्वास और जीवन है। यह उनको आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक दृष्टि से ऊपर ले जाने का साधन है। वे मजदूर संगठन की गतिविधियों को उनके परिवारों तक ले जातीं।

उन्होंने पोर्ट और डॉक (बंदर-गोदी) के कर्मचारियों को संगठित किया। वे शुरू से ही मुंबई महानगरपालिका के कर्मचारियों के साथ सम्बद्ध थीं। 1 मई 1932 को मजदूर दिवस को उन्हें गिरफ्तार किया गया और एकांत कारावास की सजा हुई। उस जेल में वे एकमात्र महिला कैदी थीं।

वे उत्तम वक्ता थीं। गुजराती, मराठी, हिंदी या अंग्रेजी में जब वे भाषण देतीं, तो श्रोतागण मंत्रमुग्ध हो जाते थे। वे वेस्टर्न रेलवे एमप्लाईज यूनियन की अध्यक्षा के बतौर 1948 में चुनी गईं और जीवन भर अध्यक्षा रहीं। उनका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक-आर्थिक असमानता के खिलाफ संघर्ष करते बीता।

अनसूया साराभाई 1885-1972

1885 में जन्मी अनसूया बहन 11 वर्ष की उम्र में अपने माता-पिता को खो चुकी थीं। जिस लड़के से इनका विवाह हुआ वह बार-बार फेल होता था। अतः अनसूया की पढ़ाई बंद कर दी गई, क्योंकि पति से पत्नी ज्यादा पढ़ी-लिखी कैसे हो सकती है? बारह वर्ष की उम्र में इनका विवाह हुआ, पर ससुराल में वे सुखी नहीं थीं। आखिर स्थायी रूप से ससुराल छोड़कर पीहर में रहने लगीं और आगे पढ़ाई जारी रखी। वे साध्वी बनना चाहती थीं, परंतु डॉ. एरलकर ने उन्हें डॉक्टर बनकर समाज की सेवा करने के लिए समझाया। वे डॉक्टरी पढ़ने इंग्लैंड गईं, डॉक्टरी पढ़ने में अंगों की चीरफाड़ करनी पड़ती थीं, जो कर पाना उनके लिए संभव नहीं था। अतः उन्होंने समाज सेवा का अध्ययन किया।

इंग्लैंड में वे स्त्रियों के मताधिकार हेतु संघर्ष करने वाले नारीवादियों और श्रमजीवियों के अधिकारों हेतु संघर्ष करने वाले समाजवादियों के संपर्क में आई। इस सम्पर्क से उनके विचार विकसित हुए। भारत लौटकर उन्होंने मिल मजदूरों के साथ काम करना शुरू किया। उनके बच्चों को पढ़ाने की शुरूआत की। धीरे-धीरे इस कार्य में ऋण, सहकारी समिति, दवाखाने आदि जुड़ते चले गए।

1917 में अहमदाबाद में प्लेग फैला तब बाहर के मजदूर अहमदाबाद छोड़कर जाने लगे। ऐसे में मालिकों ने मजदूरों को रोकने के लिए उनके वेतन में बढ़ोतरी कर दी। पर वही वृद्धि उनको नहीं दी जो अहमदाबाद के निवासी थे और कहीं बाहर नहीं जा सकते थे। इस अन्याय के विरुद्ध लड़ने के लिए

मजदूरों ने अनसूया बहन की मदद मांगी। अनसूया बहन ने उन्हें गांधीजी के सिद्धांतों के मुताबिक अहिंसक तरीके से संघर्ष करने की सलाह दी। मिल मालिकों को नोटिस दिया गया कि अगर 48 घंटों में कर्मचारियों की वेतन वृद्धि नहीं होगी तो वे हड़ताल पर चले जाएंगे। 48 घंटे बाद हड़ताल शुरू हो गई। इस संघर्ष में एक तरफ मजदूरों के पक्ष में थी अनसूया बहन, तो सामने मिल मालिकों के नेता थे – उनके भाई अंबालाल साराभाई! आखिर गांधीजी ने मध्यस्थता की और मिल मालिकों ने वेतन वृद्धि की। इस अनुभव के आधार पर आगे चलकर कामगार यूनियन 'मजदूर-महाजन' की शुरूआत हुई।

आशा: श्रमजीवियों को संगठित करने में अपना जीवन व्यतीत करनेवाली मणीबहन और अनसूया बहन के प्रति मन में सम्मान की भावना बढ़ती है। हालांकि आज भी यूनियन प्रवृत्ति में जुड़ने के लिए औरतों को कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है।

शकरी: सही बात है।

एकता: अब मैं आपको मृदुला साराभाई और कमला बहन पटेल के बारे में बताऊंगी जिन्होंने बहुत ही कठिन परिस्थिति में काम किया।

मृदुला साराभाई 1911-1974

अहमदाबाद के मिल मालिक के परिवार में जन्मी मृदुला की बहनें जब इंग्लैंड पढ़ने के लिए गईं, तब वे गुजरात विद्यापीठ में पढ़ने गईं।

स्वाधीनता संग्राम में बालकों को जोड़ने के लिए उन्होंने लड़कों की बानर सेना और लड़कियों की मार्जर सेना शुरू की। गांधीजी की अनिच्छा के बावजूद वे 1930 में दांडी कूच से जुड़ीं। शराब बंदी कार्यक्रम के दौरान एक प्रसंग उनकी निडरता दर्शाता है। शराब का माल अहमदाबाद में आने का पता लगते ही महिलाओं की एक टुकड़ी आधी रात से तैयार होकर खड़ी थी। सवेरे-सवेरे घोड़ागाड़ी में शराब लेकर जाते कलाल को देखते ही 19 वर्षीया मृदुला बहन ने चलते घोड़े की लगाम पकड़ ली और डरे बिना तेजी से चलते तांगे को रोक लिया।

वे शुरू से ही स्त्रियों को निम्न दर्जे का मानने का विरोध किया करती थीं। जब वे युवक संघ की प्रवृत्ति में सक्रिय हुईं तब संघ की मंत्री होने के नाते उन्होंने एक प्रस्ताव पारित किया जिसमें स्त्रियों को अपने नाम के आगे मिस, मिसेज, गंगा स्वरूप आदि विशेषण लगाने की कोई जरूरत नहीं है। वे स्त्री विरोधी सामाजिक रीति-रिवाजों के खिलाफ आवाज उठाती रहीं जैसे - विधवा स्त्री बिंदी क्यों नहीं लगा सकती और रंग-बिरंगे वस्त्र क्यों नहीं पहन सकती? इत्यादि। कांग्रेस के कई नेताओं का उनकी गतिविधियों और विचारों से विरोध था, परंतु उन्होंने दृढ़ता के साथ अपनी गतिविधियों को जारी रखा।

1930 के स्वाधीनता संग्राम में घर से बाहर निकलने वाली स्त्रियों के लिए वापस रसोईघर की शोभा बढ़ाना संभव नहीं था। उन्होंने स्त्रियों के विकास हेतु 1934 में ज्योति संघ की स्थापना की। ज्योति संघ में जात-पांत-धर्म से परे स्त्रियों को अनेक प्रकार के शिक्षण और जागृति सम्बन्धित सुविधाएं थी। पति की मारपीट, त्रास झेलने वाली स्त्रियों, असामाजिक तत्वों के हाथों फंसी स्त्रियों को, संस्था के तैयार किये गये कार्यकर्ता जैसे - पुष्पाबहन मेहता, चारुमतिबहन योद्धा, उदयबहन आदि खुद जाकर छुड़ाती। इससे ऐसा कहा जाता था कि यह संस्था परिवार तोड़ने के लिए बनी है। एक मौके पर सरदार पटेल जैसे नेता ने भी कहा था कि 'ज्योति संघ को कांग्रेस में मिला दें' या फिर बंद कर दें। लेकिन मृदुला बहन की दृढ़ता के कारण ज्योति संघ विकसित होता गया और अनेक महिला कार्यकर्ताओं को तैयार किया।

उन्होंने जीवन भर कौमी एकता के लिए काम किया। 1941 और 1946 में अहमदाबाद में, 1946 के अंत में मेरठ में और विभाजन के बाद बिहार में हुए कौमी दंगों में उन्होंने एकता स्थापित किया। 1946 में मेरठ में कांग्रेस अधिवेशन होना था। उससे पहले सांप्रदायिक दंगे हुए। जिला कलेक्टर ने उपद्रव रोकने का जिम्मा मृदुला बहन और उनके साथियों को सौंपा। ऐसा माहौल था कि गढ़मुक्तेश्वर के मेले में उपद्रव फैला कर वापिस लौटने वाला किसानों का दल मुस्लिम आबादी वाले क्षेत्रों में उपद्रव मचायेगा। मृदुला बहन ने पुलिस की मदद के लिए संदेश भेजा, लेकिन पुलिस के आने के पहले ही जाट और पठानों के समूह आमने-सामने हो गये। उन्हें रोकने के लिए मृदुला बहन पेड़ पर चढ़ गईं और वहीं से संबोधन किया। छह घंटे तक उसने दोनों समूहों को रोके रखा।

आजादी के समय हुए बंटवारे के परिणाम स्वरूप भारत और पाकिस्तान में हजारों हिंदू-मुस्लिम स्त्रियों के अपहरण हुए थे। उनको लौटाने का प्रश्न बहुत पेचीदा था। मृदुला बहन ने अपने प्राणों को संकट में डालकर दोनों देशों की सरकारों के साथ काम कर हिंदू स्त्रियों को भारत में और मुस्लिम स्त्रियों को पाकिस्तान में पहुंचाने जैसा मुश्किल काम कर दिखाया।

वे अपने विचारों को व्यक्त करने में कभी भी पीछे नहीं हटीं। आजादी के बाद उन्होंने कश्मीर के सवाल पर नेहरु सरकार की नीति का और शेख अब्दुल्ला की गिरफ्तारी का विरोध किया। इसके बदले उन्हें सरकार की सभी समितियों में से निकाला गया और तिहाड़ जेल में डाल दिया गया। कइयों ने उन पर देशद्रोह का आरोप भी लगाया। परंतु उन्होंने न्याय हेतु अपना अभियान आजीवन जारी रखा।

कमला बहन पटेल

देश विभाजन के समय किये जाने वाले कार्यों में मृदुला बहन की सहयोगी थीं, कमला बहन पटेल। कमला बहन का जन्म नडियाद के पास सोजित्रा गांव में हुआ था। इनका परिवार प्रारंभ से ही स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय था। 15 अगस्त 1947 को जब देश की स्वतंत्रता की घोषणा हुई तब वे अहमदाबाद में थीं। आधी रात को कांग्रेस भवन पर जब उन्होंने राष्ट्र ध्वज फहराता देखा, तब उन्होंने महसूस किया कि अब जिंदगी का एक कठिन काल पूरा हुआ। परंतु नवंबर माह में ही मृदुला बहन का संदेश मिला और वे लाहौर के लिए रवाना हो गईं। पैंतीस वर्षीया नितांत बालिका जैसी दिखने वाली कमला बहन पर मृदुला बहन ने कठिन जिम्मेदारी डाल दी थी।

लाहौर से निर्वासितों की छावनी में रहते हुए पाकिस्तान से अपहृत्त हिंदू महिलाओं को वापिस भारत भेजने की जिम्मेदारी इन्हें सौंपी गई थी। अपने प्राण को संकट में डालते हुए कठिन परिस्थितियों में वे किसी प्रकार से बाहर निकलने का रास्ता निकालती रही, उनके अनुभवों से लिखी 'मूल स्रोत से उखड़े हुए' नामक पुस्तक पढ़ने से उनकी सजागता, समझदारी और हिम्मत का पता चलता है। साथ ही साथ इसकी स्पष्ट जानकारी प्राप्त होती है कि ऐसी परिस्थिति में मनुष्य, मनुष्य के साथ और पुरुष महिलाओं के साथ किस हद तक पाशविक व्यवहार कर सकता है।

इस कार्य को करते समय उनके सामने एक सवाल बराबर आता रहा कि स्त्रियों पर जुल्म सिर्फ मुसलमानों ने ही किये थे या हिन्दुओं ने भी किये थे? अपनी उक्त पुस्तक में उन्होंने जो उत्तर दिये वे इस प्रकार हैं:

'स्त्रियों पर किन जातियों ने ज्यादा जुल्म ढाये, इस विवाद का मेरा स्पष्ट उत्तर यह है कि सामान्य परिस्थिति में सभ्य दिखाई देने वाले पुरुषों ने इंसानियत को एक तरफ रखकर स्त्रियों पर अत्याचार किये थे। स्त्रियों पर अमानुषिक और कठिन जुल्म लादने में मुस्लिम या गैर-मुस्लिम कोई भी एक दूसरे से कम नहीं थे। इस संबंध में एक ही दृष्टांत पर्याप्त होगा। अत्यंत पवित्र माने जाने वाले अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में मुस्लिम स्त्रियों को नंगा कर रात भर नचाया गया था और रावलपिंडी में हिन्दू स्त्रियों को नंगा कर आम रास्तों पर घुमाया गया था।'

नीरू: कमला बहन की लिखी हुई बात को पढ़ कर तो मनुष्य जाति पर से विश्वास उठ जाता है... क्या धर्म आदमी को इस हद तक नीचे गिरा सकता है?

शकरी: जो धर्म मनुष्य को मनुष्य न रहने दे, क्या उसे धर्म कहा जायेगा?

आशा: शकरी बहन ठीक कहती हैं। आज की बात सुनकर तो मन बहुत बेचैन हो गया है। इसलिए आज की चर्चा पूरी करने से पहले जो इन्सान को इन्सान बनाये, ऐसे धर्म की उम्मीद जताने वाला कोई गीत हमें गाना चाहिए।

फरजानाः: आप गाइए और हम सब साथ देंगे।

अब तो मज़हब कोई ऐसा ही बनाया जाए

अब तो मज़हब कोई ऐसा ही बनाया जाए
जिसमें हर इंसान को इंसां बनाया जाए

आग बहती है यहां गंगा में भी झेलम में भी
कोई बतलाये कहां जाकर नहाया जाए

जिसकी खुशबू से महक उठे पड़ौसी का भी घर
फूल ऐसा अपनी बगिया में खिलाया जाए

तेरे दुख और दर्द का मुझ पर भी हो ऐसा असर
तू रहे भूखी तो मुझ से भी न खाया जाए

जिस्म चाहे दो हों लेकिन दिल तो अपने एक हों
तेरा आंसू मेरी पलकों से उठाया जाए
जिसमें हर इंसान को इंसां बनाया जाए

- नीरज

एकता: जिस प्रकार शासन व्यवस्था में अथवा सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों ने योगदान दिया, उसी प्रकार स्त्रियों के लिए नये समझे जाने वाले व्यवसायों में भी कई बहादुर स्त्रियां हिम्मत के साथ कूद पड़ीं। जैसे हंसाबेन मेहता भारत की प्रथम महिला उपकुलपति बनीं और उन्होंने विश्वविख्यात महाराज सयाजीराव गायकवाड़ युनिवर्सिटी का दायित्व संभाला, तो होमाई व्यारावाल प्रथम महिला फोटो जर्नलिस्ट बनी।

हंसा मेहता 1897-1995

हंसा बहन का बाल्यकाल बड़ौदा में बीता और वहीं उन्होंने शिक्षा पाई। वे बड़ौदा कॉलेज से स्नातक हुईं। बाद में वे आगे की पढ़ाई के लिए लंदन गईं, जहां सरोजिनी नायडू से उनकी मैत्री हुई। यह मैत्री जीवन पर्यंत रही। इस मित्रता ने उनका स्त्री-आंदोलन से सम्पर्क कराया। जिनेवा में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय वीमेंस कांफ्रेंस में उन्होंने सरोजिनी नायडू के साथ भाग लिया।

1923 में वे अकेली ही अमेरिका की यात्रा पर निकलीं और वहां अनेक लोगों से मिलीं। लौटते समय जापान गईं जहां उन्हें भयानक भूकंप का सामना करना पड़ा। भूकंप से उनका बड़ी अदभुत रूप से बचाव हुआ। इस तरह देश-विदेश में अकेले यात्रा करने से उनके ज्ञान व अनुभव का विस्तार हुआ।

1924 में उन्होंने अनेक विरोधों के बावजूद जीवराज मेहता से अंतर्जातीय विवाह किया। इस पर उन्हें जाति से बाहर कर दिया गया। उसके बाद वे स्वतंत्रता संग्राम से जुड़ गईं। 1930 में उन्होंने मुंबई में एक विशाल जुलूस की अगुवाई की।

वे अखिल भारतीय महिला परिषद से जुड़ीं और 1945 में परिषद के अध्यक्ष के रूप में 'स्त्रियों के अधिकार का घोषणा पत्र' तैयार किया। वे भारत की संविधान सभा की सदस्य भी थीं और संविधान में स्त्रियों के अधिकार शामिल करने के लिए उन्होंने अन्य स्त्री सदस्यों के साथ मिलकर दबाव डाला। उन्होंने यू.एन.ओ. में भारत का प्रतिनिधित्व किया और 'मानवाधिकार घोषणा पत्र' तैयार करने वाली यू.एन.ओ. की समिति की सदस्य रहीं। वे बड़ौदा के विश्वविख्यात महाराजा सयाजीराव युनिवर्सिटी की प्रथम उपकुलपति बनी और उस दायित्व को लगातार नौ वर्षों तक कुशलतापूर्वक निभाया। सह शिक्षण प्रदान करने वाली युनिवर्सिटी में उपकुलपति बनने वाली वे प्रथम महिला थीं।

साहित्यिक क्षेत्र में भी उनका अदभुत योगदान था। उन्होंने शेक्सपियर के 'हैमलेट' का गुजराती में अनुवाद किया। इसके अलावा फ्रेंच नाटकों, वाल्मीकि रामायण के छः कांडों का संस्कृत से गुजराती में भाषांतर किया। अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में उन्होंने यूनेस्को के एक्जिक्यूटिव बोर्ड के मेम्बर के रूप में काम किया। 1959 में उन्हें पद्‌मभूषण से सम्मानित किया गया।

होमाई व्यारावाला 1913

भारत की प्रथम महिला फोटो जर्नालिस्ट होमाईबहन व्यारावाला 92 वर्ष की उम्र में भी बड़ौदा में स्वनिर्भर तरीके से अपना जीवन यापन कर रही हैं। घर के सारे काम, कपड़े सीने से लेकर रसोई तक और प्लंबर या सुथारी काम आदि वे इस उम्र में भी अपने आप करती हैं।

नवसारी में सुनाभाई और डोसाभाई के घर जन्मी होमाई ने हाईस्कूल की पढ़ाई मुंबई में की। अपनी कक्षा में मैट्रिक पास होने वाली वे एकमात्र छात्रा थीं। उसके बाद उन्होंने मुंबई में जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में चित्र-शिक्षक के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त किया। इसी दौरान उनका माणेकशा से परिचय हुआ। माणेकशा होमाई की पढ़ाई में बहुत मदद देते थे। उन्हें फोटोग्राफी का बहुत शौक था। वे फोटो खींचकर अखबार में भेजते। एक बार होमाई पिकनिक पर गईं, तब उन्होंने माणेकशा के कैमरे से फोटो खींचे। उन फोटोग्राफ को उन्होंने माणेकशा के नाम से अखबार को भेजा, जो बोम्बे क्रानिकल के पहले पन्ने पर छपे। इस तरह होमाई बहन ने फोटो जर्नलिज्म की शुरूआत की। शुरूआत के वर्षों में स्त्रियों के नाम से फोटो भेजो तो छपते ही नहीं थे, अतः वे माणेकशा के नाम से फोटो भेजतीं।

होमाई और माणेकशा की मित्रता विवाह में परिणत हुई। उसके बाद होमाई ने स्वतंत्र फोटोग्राफर के रूप में काम शुरू किया। उस जमाने में फोटोग्राफी करना आसान बात नहीं थी। फोटोग्राफी के कैमरे, स्टैंड और अन्य सामग्री बहुत बड़े आकार के और वजनी होते थे, परंतु होमाई बहन साड़ी पहने इन तमाम साधनो से फोटोग्राफी करतीं।

कालांतर में अत्यंत प्रसिद्ध 'इलस्ट्रेटेड वीकली' पत्रिका में उनके खींचे फोटो उन्हीं के नाम से छपे।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार के सूचना विभाग में पति-पत्नी दोनों को फोटोग्राफर के रूप में नौकरी मिली। उस समय गर्भवती होने के कारण वे तत्काल नौकरी से जुड़ नहीं सकीं, तो छः महीनों तक उनका स्थान खाली रखा गया।

घर के काम या बच्चों के लिए उन्होंने नौकर कभी नहीं रखा। सारा काम पति-पत्नी मिलकर खुद करते थे। 30 से दशक से 70 के दशक तक उन्होंने फोटोग्राफी की। वह समय भारतीय इतिहास का महत्त्वपूर्ण समय था। उन्होंने नेहरु, गांधीजी, लाल बहादुर शास्त्री जैसे अनेक राष्ट्रीय नेताओं के फोटोग्राफ लिए। गांधीजी की अंतिम यात्रा, गांधीजी और अब्दुल गफ्फारखां के मिलने जैसे प्रसंगों के फोटो लिये। आजादी के बाद बांधों और विद्युतीकरण आदि के फोटो लिये जिन्हें नेहरु आधुनिक भारत के मंदिर कहते थे।

1969 में माणेकशा की मृत्यु के बाद उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि जिनके साथ फोटोग्राफी शुरू की थी, उनके जाने के बाद छोड़ देगी। 1982 से वे बड़ौदा में रहती हैं और 92 वर्ष की अवस्था में भी अपना हर काम खुद ही करती हैं।

कमला: सचमुच ऐसा कोई भी क्षेत्र नहीं है कि जिसमें महिलाओं ने सफलता प्राप्त न की हो। अगर अधिकार और अवसर मिल जाए तो स्त्रियां क्या नहीं कर सकतीं?

रेशमा: लेकिन अधिकार के साथ अवसर भी मिलने चाहिए ना?

आशा: सच कहा। अपनी ही बात करो न... अधिकार तो सारे कानून की पोथी में बंद हैं और अवसर पाने के लिए घर और बाहर हर तरफ लड़ना पड़ता है।

एकता: सही कहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिन कुछेक महिलाओं को अधिकार व अवसर दोनों मिले अथवा उन्होंने संघर्ष करके प्राप्त किये, उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में इतनी सफलता अर्जित की कि ऐसा कोई भी नहीं कह सकता कि स्त्रियों में क्षमता नहीं है। परंतु इसके साथ एक ऐसा प्रभाव भी पड़ा कि भारतीय महिलाओं को संविधान में समानता मिल गई, अतः अब कोई ज्वलंत प्रश्न नहीं रहा। इसी वजह से आजादी के तुरंत बाद के दो दशकों

को आंदोलन के इतिहास में 'शांत दशक' (Silent Decades) कहते हैं।

फरजाना: 'शांत दशक' मतलब?

एकता: शांत इसलिये कि इन दशकों में खास कोई आंदोलन दिखाई नहीं दिये क्योंकि इस दौरान लोगों के मन में आशा थी कि अपने देश में अपनी सरकार है, आज नहीं तो कल, हमारी समस्याओं पर ध्यान दिया जाएगा और अपनी गरीबी, बेकारी दूर होगी। सबको रोटी, कपड़ा, मकान मिलेगा। सबको अच्छी शिक्षा मिलेगी। सबके लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। सरकार ने भी ऐसा ही कहा, कि एक बार अपने देश में विकास हो जाने दो, उत्पादन बढ़ने दो, फिर धीरे-धीरे विकास का लाभ सब तक पहुँचेगा।

शकरी: लेकिन अब तक तो विकास का लाभ हम तक नहीं पहुंचा।

एकता: सही बात है। विकास का लाभ लोगों तक नहीं पहुंचा इसीलिए देश के अलग-अलग भागों में जन आंदोलन की शुरूआत हुई।

कमला: इस समय के दौरान कौनसे जन आंदोलन हुए?

नीरू: और इस जन-आंदोलन में भी स्त्रियों ने अपना योगदान दिया है ना!

एकता: हां। आजादी के आंदोलन की तरह इन सभी आंदोलनों में भी स्त्रियों की भागीदारी और बलिदान उल्लेखनीय रहे। इन आंदोलनों और उनमें स्त्रियों ने क्या किया इसकी चर्चा हम संक्षेप में अगली बार करेंगी।

जन-आंदोलनों में स्त्रियों का योगदान

एकता: जैसे हमने देखा, शुरूआत के कुछ समय के बाद सामान्य लोगों की, कर्मचारियों, मजदूरों, आदिवासियों की और स्त्रियों की जिंदगी बद से बदतर होती गई। रोजाना सवेरे उठकर एक को जोड़े, तो तेरह टूटे, जैसी परिस्थिति होने लगी, और 1960 के दशक के अंत तक लोगों का धीरज टूट पड़ा। देश के अलग-अलग भागों में लोगों के संघर्ष बहुत उग्र हो गये। अपनी मांगों के लिए सरकार के खिलाफ आंदोलन करने के लिए हजारों लोग सड़कों पर आ गये। अत: 1960 के दशक के अंत से 1970 के दशक तक के समय को जन-आंदोलन की समयावधि कहते हैं।

1960 के दशक के अंत में जमींदारों के शोषण और राज्य के दमन के विरुद्ध पश्चिम बंगाल, आंध्र प्रदेश, बिहार और केरल में **नक्सलवादी आंदोलन** शुरू हुआ। उसमें खेतीहर मजदूरों और आदिवासी महिलाओं ने बड़ी संख्या में भाग लिया। 1967 में सी.आर.पी. और नक्सलवादियों के बीच संघर्ष हुआ, जिसमें कई लोग मारे गये। इन मरने वालों में सात महिलाएं भी थीं। नक्सलवादी आंदोलन के इतिहास में वे 'सप्त-कन्या' के रूप में विख्यात हैं। जब 70 के दशक की शुरूआत में इस संघर्ष को कुचला गया, तब पुरुषों के साथ हजारों स्त्रियों को भी जेल में डाल दिया गया। जेल में उन पर अमानवीय अत्याचार किये गये।

रेशमा: हमने सुना है कि नक्सलवादी तो निर्दोषों पर भी अत्याचार करते हैं।

आशा: हाँ, जैसे आतंकवादी।

एकता: नक्सलवादी आतंकवादी नहीं हैं।

फरजाना: लेकिन आज कल तो हम पढ़ते हैं कि वे किसी भी अफसर या निर्दोष नागरिकों को भी मार देते हैं। क्या ये अच्छी बात है?

एकता: बिना वजह किसी की हत्या करना बिलकुल उचित नहीं है। और अगर कोई वजह हो तो भी हिंसा का रास्ता अपनाने से पहले अनेक बार सोचना चाहिए क्योंकि अगर लंबी सोचे तो हिंसा से पुरुष सत्ता को ही बढ़ावा मिलता है।

नीरू: वो कैसे?

एकता: नारी आंदोलन में इस मुद्दे पर अलग अलग विचार हैं। एक विचार यह है कि शोषण, अन्याय करने वाले हमेशा ही लोगों को दबाने के लिए पुलिस, सेना द्वारा हिंसा का सहारा लेते हैं, तो इसके खिलाफ लड़ने के लिये अगर प्रतिहिंसा का सहारा लें तो कोई गलत बात नहीं है।

शकरी: ठीक है, जैसे के साथ तैसा!

एकता: लेकिन दूसरा विचार यह है कि जब आप लड़ने के लिए प्रतिहिंसा का सहारा लेते हैं तो लंबे अरसे में पुरुष सत्ता को ही मदद मिलती है।

फरजाना: सही है, औरतें थोडे ही हिंसा करने जाती हैं?

रेशमा: अरे इसी विभाग में तो हमने झलकारी बाई, उदा देवी, बीना दास और प्रीतिलता की बातें सुनी हैं।

कमला: लेकिन इनको स्त्री होने के बावजूद 'मर्दाना' ही कहते हैं।

एकता: सही बात। हिंसा मर्द और औरत दोनों करते हैं। लेकिन जिस संघर्ष में हिंसा की रणनीति अपनाई जाती है, उसमें निर्णय प्रक्रिया कुछ नेताओं के हाथ में ही रहती है और अंत में तानाशाही जन्म लेती है। लम्बे अरसे में तानाशाही औरतों और आम लोग के हकों के खिलाफ ही जाती है।

रेशमा: मतलब हिंसा कहीं न कहीं अन्याय और असमानता को जन्म देती है या कायम रखती है।

एकता: सही बात। लेकिन नारी आंदोलन में और जन आंदोलनों में यह बहस अभी जारी है। इसके बारे में कभी विस्तार से बात करेंगे। अभी मैं आपको इस समय के दूसरे जन आंदोलनों के बारे में बताऊंगी।

कमला: मैने सुना था उस समय छात्रों ने भी आंदोलन किये थे।

एकता: हाँ! 1974 में गुजरात में महंगाई और भ्रष्टाचार के खिलाफ '**नव-निर्माण**' का आंदोलन हुआ। इस आंदोलन में छात्राओं और मध्यम वर्ग की महिलाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। प्रातः काल प्रभात फेरी करना, भ्रष्टाचारी सरकार का मृत्युघंट बजाना, धरनों, नुक्कड़ नाटकों, मॉक कोर्ट जैसी तमाम गतिविधियों में महिलाओं ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। आंदोलन के दौरान युवकों को पुलिस व फौज के दमन से बचाने के लिए जुलूस में सबसे आगे महिलाएं चलतीं। जब पुलिस युवकों की धरपकड़ करती, तो उनको छुड़ाने के लिए स्त्रियां फौरन, मोर्चा लेकर जाती थी।

गुजरात के 'नव-निर्माण' आंदोलन से प्रेरित होकर जयप्रकाश नारायण ने बिहार के नवयुवकों को आंदोलन करने के लिए आह्वान किया '**सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन**' के रूप में विख्यात इस आंदोलन में छात्राओं ने भी अनेक अवरोधों और पारिवारिक विरोधों को झेलते हुए भाग लिया। उन्होंने महिला संघर्ष वाहिनी की स्थापना की। महिला संघर्ष वाहिनी ने आगे जाकर स्त्रियों के

जमीन अधिकार के लिए जो महत्त्वपूर्ण संघर्ष किया, उसके बारे में कभी बात करेंगे।

आशा: इस दौरान क्या श्रमजीवी-कर्मचारियों ने कोई संघर्ष किया था?

एकता: हां, शहरों में कारखानों में भी कई संघर्ष हुए जिसमें 1975 में रेलवे कर्मचारियों ने संपूर्ण देश में ऐतिहासिक हड़ताल की। इस हड़ताल में रेल कर्मचारियों के परिवार की महिलाओं ने भी सक्रिय योगदान दिया। हड़ताल को तोड़ने के लिए किशनगंज रेलवे कॉलोनी में पुलिस द्वारा हमलों, स्त्रियों के साथ मारपीट, छेड़छाड़ व बलात्कार आदि घटनाएं होने के बावजूद स्त्रियां पीछे नहीं हटीं, वरन हड़ताल को अपना समर्थन देना जारी रखा।

इन सभी आंदोलनों में स्त्रियों ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ाई लड़ीं थी। लेकिन कई ऐसे आंदोलन भी हुए, जिनमें मुख्य नेतृत्व स्त्रियों का था, जैसे चिपको आंदोलन।

रेशमा: चिपको आंदोलन! यह भला कैसा नाम है?

एकता: इसका नाम चिपको आंदोलन इसलिए पड़ा क्योंकि पेड़ों को कटने से बचाने के लिए स्त्रियोंने पेड़ों के साथ चिपक कर जंगल की रक्षा की।

नीरू: लेकिन पेड़ की रक्षा कैसे की?

आशा: और क्यों की?

एकता: उत्तर भारत में स्थित टिहरी-गढ़वाल के वनांचल की यह बात है। इस अंचल के लोगों का जीवन जंगल पर आधारित है। सरकार ठेकेदारों को जंगल काटने की इजाजत दे देती थी और जंगलों का विनाश हो जाता था। जंगल न रहने पर, स्त्रियों को ईंधन, चारे, पानी से जुड़ी तकलीफें रोज-रोज झेलनी पड़ती थी। 1973 में गांधीवादी नेता सुंदरलाल बहुगुणा और चंडीप्रसाद ने जंगल बचाने के लिए आंदोलन शुरू किया। इस आंदोलन में सबसे पहले जोशीमठ के पास रेनी गांव की महिलाएं शामिल हुईं। 1974 में जब इस गांव के पास के जंगलों की नीलामी हुई और

ठेकेदार जंगल काटने के लिए आये, तब सबसे पहले स्त्रियों ने उन पेड़ों को राखी बांधी और उनकी रक्षा करने का निश्चय किया। बाद में जब ठेकेदारों की मदद करने पुलिस आई, तो स्त्रियां पेड़ों से चिपक गईं और बोलीं कि 'पहले कुल्हाड़ी हम पर चलाओ इसके बाद ही तुम पेड़ काट सकोगे।' ठेकेदार के लोगों को खाली हाथ वापिस जाना पड़ा। यह बात गांव में फैल गई और जंगल बचाने के लिए शुरू हुआ यह आंदोलन आगे चलकर स्त्रियों का आंदोलन बन गया। स्त्रियों ने पेड़ से लिपटकर, जंगल को बचाया, इस कारण यह आंदोलन 'चिपको आंदोलन' के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

कमला: मतलब यह कि समाज द्वारा स्त्री को दी गई भूमिका, जैसे कि ईंधन, चारे, पानी आदि लाने की जिम्मेदारी निभाना आसान हो इसके लिए स्त्रियों ने संघर्ष किया।

एकता: इसके अलावा आदिवासी महिलाओं की अपने जीवन की परिस्थितियों से उद्भूत पर्यावरण आदि की अपनी सूझ-समझ के प्रतीक के रूप में भी यह आंदोलन दुनिया भर में प्रसिद्ध हो गया। साथ ही पर्यावरण के प्रति नारीवादी दृष्टिकोण के विकास हेतु एक उदाहरण बना।

चिपको आंदोलन में जीवन यापन की परिस्थितियों से उद्भूत इस आदिवासी अंचल की बात है तो महाराष्ट्र और गुजरात की शहरी महिलाओं का **'महंगाई प्रतिकार महिला आंदोलन'** शहरी स्त्रियों की संघर्षशीलता का प्रतीक बना।

आशा: महंगाई प्रतिकार महिला आंदोलन! हमें इसके बारे में भी बताओ ना!

एकता: 1973 में महाराष्ट्र के शहरों में जीवन की जरूरी वस्तुओं के बढ़ते मूल्यों के खिलाफ आंदोलन शुरू किया गया। समाजवादी पार्टी की मृणाल गोरे और भारतीय साम्यवादी मार्क्सवादी पार्टी की अहिल्या रांगणेकर ने सभी दलों की महिलाओं से एक मंच पर आने की अपील की। 'महंगाई प्रतिकार महिला आंदोलन' के नाम से विख्यात इस आंदोलन से हजारों स्त्रियां जुड़ गईं। मध्यम वर्ग की शहरी महिलाओं ने थाली-बेलन लेकर रोजाना जुलूस निकाले और सरकार, जमाखोरों व काला बाजारियों के खिलाफ युद्ध छेड़ दिया। कई स्थानों पर महिलाओं ने जमाखोर व्यापारियों

के गोदामों का घेराव किया। उनके गोदामों के ताले खोलकर उचित मूल्य पर वस्तुएं बेचने हेतु बाध्य किया। यह आंदोलन गुजरात के कई शहरों में भी फैला। वड़ोदरा में इस महिला समिति के नेतृत्व में सभी विरोधी दलों के साथ विविध स्वैच्छिक संस्थाएं भी जुड़ गईं। दूध के दाम बढ़ाने के खिलाफ संघर्ष की शुरूआत हुई। हजारों स्त्रियां सूर्योदय से पहले ही वड़ोदरा डेरी के गेट पर जा पहुंची। गेट पर पुलिस को नियुक्त कर दिया गया था। उन्होंने स्त्रियों को अंदर जाने से रोका, लेकिन कई युवतियां पुलिस को चकमा देकर अंदर जा घुसीं। उन्होंने डेरी के प्रशासकों का घेराव किया और कहीं वे लोग भाग न जायें, इसलिए उनकी गाड़ियों की हवा निकाल दी। पुलिस ने आंदोलनकारी महिलाओं को रोकने की कोशिश की परंतु स्त्रियां झुकी नहीं और बड़ी संख्या में गिरफ्तारी दी। गिरफ्तारी देने वाली युवा महिलाओं के साथ नन्हीं किशोरियां भी शामिल थीं।

रेशमा: लेकिन महंगाई और जीवन-यापन के प्रश्न तो अंततः सम्पूर्ण समाज के प्रश्न हैं, तो क्या इस समय में महिलाओं की अपनी समस्याओं के लिए भी आंदोलन हुए थे?

एकता: स्त्रियों को जब जनता से संबंधित समस्याओं को लेकर इकट्ठा

होने का मौका मिलता है, तब उनमें अपने स्त्री संबंधी सवालों के बारे में बात करने की भी संभावना जग जाती है। ऐसा ही महाराष्ट्र के शाहदा अंचल में हुआ।

1972 में शाहदा (महाराष्ट्र) में जमींदारों और वन विभागों के अधिकारियों के शोषण के खिलाफ '**श्रमिक संगठन**' काम करता था। अकाल के वर्षों में यह संगठन आदिवासी इलाके में तेज़ी से फैला। इस आंदोलन में अधिक संख्या में आदिवासी महिलाएं शामिल हुईं और उन्होंने जबरदस्त जुझारू भूमिका अदा की। इस संघर्ष के अनुभव से स्त्रियों का आत्मविश्वास बढ़ा और उन्हें पता लगा कि संगठन की ताकत कितनी बड़ी है। तब वे इस ताकत और आत्मविश्वास का उपयोग अपनी रोजमर्रा की जिंदगी से संबंधित मुद्दों में करने लगीं।

आशाः वह कैसे?

एकताः एक बार एक महिला शिविर में एकत्रित महिलाओं ने उन पतियों के बारे में चर्चा की जो शराब पीकर मारपीट करते थे। अभी तक हर महिला को लगता था कि यह तो उनकी अकेली की समस्या है, लेकिन चर्चा से उन्हें पता चला कि यह कोई अकेली-दुकेली महिला की समस्या नहीं, वरन सबकी समस्या है। दारू से छुटकारा गांव कैसे प्राप्त करे? चर्चा करती-करती ये स्त्रियां शिविर से समूह बनाकर सीधी दारू की दुकान पर जा पहुंचीं और दारू की बोतलें फोड़ डाली। फिर उन्होंने एक गांव से दूसरे गांव की तरफ अपना मोर्चा चालू रखा। इस कूच के दौरान रास्ते में अन्य महिलाएं समूह से जुड़ती गईं महीनों तक यह आंदोलन चला। दूसरे उपाय के रूप में, उन्होंने आगे बढ़कर मारपीट करने वाले पुरुषों के खिलाफ कदम उठाना शुरू किया। उन्होंने पत्नी से मारपीट करने वाले पति के गले में जूतों की माला पहनाकर तथा गधे पर बिठाकर गांव में घुमाया।

फरजानाः मुझे तो बहनों की यह बात बहुत अच्छी लगी। कोर्ट-कचहरी, पुलिस किसी के चक्कर में पड़े बगैर बहनों ने अपना रास्ता अपने आप ढूंढ़ निकाला।

एकताः तुम्हारी बात सही है। परिवार में होने वाली हिंसा के विरुद्ध सीधी कार्यवाही करने की प्रेरणा अनेक स्त्री-समूहों को सर्वप्रथम शाहदा

आंदोलन से प्राप्त हुई। इसी भांति बड़े-बड़े मजदूर संगठनों ने श्रमजीवी के रूप में स्त्री के मौलिक सवालों को जब नजरंदाज किया तो स्वाश्रयी महिलाओं का संगठन भी इसी समय शुरू हुआ। श्रमजीवी के नाते स्त्री की अपनी पहचान खड़ी करने में **'सेवा'** (Self Employed Women's Association) का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा।

शकरी: 'सेवा' का नाम तो हमने सुना है, पर उसकी शुरूआत कैसे हुई, यह तो बताओं।

एकता: 'सेवा' (स्वाश्रयी महिलाओं का संगठन) को भारत की महिला कार्मिकों की प्रथम यूनियन कहा जा सकता है। गुजरात में इलाबेन भट्ट के नेतृत्व में मजदूर महाजन की शाखा के रूप में 1972 में सेवा की शुरूआत हुई थी। पुराने कपड़े बेचने वाली, साग सब्जी वाली, लारी-गल्ला-पथारा वाली, अगरबत्ती या बीड़ी बनाने वाली, तम्बाकू के खलिहान में काम करने वाली, खेतीहर-मजदूर बहनें, आदि अलग-अलग प्रकार के असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली स्त्रियों के रोजमर्रा के मुद्दे तो एक जैसे ही होते हैं। उनकी काम की परिस्थितियां तो बदतर होती ही हैं और वेतन भी बहुत कम मिलता है। किसी का व्यापारियों द्वारा शोषण होता है, तो किसी की पुलिस या अधिकारियों द्वारा दुर्दशा होती है। धंधा करने के लिए पैसा नहीं होता और उधार पैसा लें तो साहूकार द्वारा शोषण होता है। ये स्त्रियां दिन भर जी-तोड़ मेहनत करती हैं, पर मजदूर नहीं कहलातीं। सरकार उनके लिए कोई योजना भी नहीं बनाती। इलाबेन ने इन स्त्रियों को स्वाश्रयी महिला नाम देकर इनका संगठन बनाया। स्वाश्रयी बहनों के इस संगठन को ट्रेड यूनियन के रूप में रजिस्टर कराने के लिए भी सेवा को संघर्ष करना पड़ा था। ट्रेड यूनियन के अलावा महिलाओं के बैंक, सहकारी समितियां, स्वास्थ्य कार्यक्रम और बीमा योजना द्वारा श्रमजीवी महिलाओं की जिंदगी को अधिक बेहतर बनाने के काम में सेवा का योगदान उल्लेखनीय है। इसके अलावा असंगठित क्षेत्र में काम करने वाली स्त्रियों के लिए देश व दुनिया की सरकारों की नीतियों पर असर डालने का काम भी सेवा ने किया है। आज दस लाख स्त्रियां इस संस्था की सदस्य हैं।

नीरू: इन सब आंदोलनों की बातें सुनकर तो लगता है जैसे अंग्रेजों को देश से भगाने के बावजूद लोगों के हालात जैसे के तैसे ही रहे।

रेशमा: सही बात है। हमारे कॉलेज में एक युवा समूह आया था, उन्होंने एक जोरदार गाना सुनाया था वह मैं आपको सुनाती हूं।

गोरे हाकिम गयो रे भैया

गोरे हाकिम गयो रे भैय्या, आ गये हाकिम काले।
बदल गयी है चाभी लेकिन बदले नहीं हैं ताले
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।
तो क्या मैं कुफुर तोलिया? कोइना...।
तो क्या मैं जहर धोलियां? कोईना भई कोइना भई कोइना
बल्ले बल्ले बल्ले... याहुं याहुं याहुं... आ आ आ आ हडिप्पा

मैं हूं थानेदार यारों मैं हूं सूबेदार
पहले इक मुरगी खाता था अब खाता हूं चार
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।

मेरा नाम है बिड़ला यारो, मेरा नाम है टाटा
हम दोनों ने मिल कर आधा-आधा भारत बांटा
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।
मैं हूं सेठ हजारीमलजी सोने का वेपारी
असेंबली का मेंबर हूं करता हूं चोरबाजारी
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।

मैं हूं पंडित जयजयशंकर दया धरम का बंदा
रामनाम जप नित खाता हूं गौशाले का चंदा
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।

बन के अफसर किया है मैंने कितनों का कल्याण
भाई को दिलवाया ठेका, साला है कप्तान
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।

टैक्स के ऊपर रोज नया एक चढता जाये टैक्स
घटता जाये जीवन यारों बढ़ता जाये टैक्स
तो क्या मैं झूठ बोलिया? कोइना...।

कमला: काले हाकिमों के खिलाफ हुए जन-आंदोलनों के बारे में हमें काफी जानकारी मिली। लेकिन आप नारी आंदोलन के बारे में कब बताएंगी?

एकता: इन जन-आंदोलनों में ही बाद में उभरे नये और संघर्षशील नारी आंदोलनों के दौर की जड़े निहित हैं।

रेशमा: वह कैसे?

एकता: जैसा कि हमने देखा, इस दौरान हुए सभी आंदोलनों में स्त्रियों ने बड़े पैमाने पर जुझारू भूमिका अदा की थी। पर शाहदा आंदोलन को छोड़ दें तो शेष सभी जन-आंदोलन स्त्रियों की खास समस्याओं या स्त्रियों के दृष्टिकोण से लड़ने वाले आंदोलन नहीं थे। वैसे इन आंदोलनों में भाग लेने के कारण स्त्रियों में एक प्रकार की जागृति आई थी और आत्मविश्वास भी जन्मा था। उनको यह अनुभव भी हुआ कि जन-जीवन से संबंधित सभी मुद्दों में स्त्रियां, पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ती हैं, फिर भी ऐसे आंदोलनों का नेतृत्व मुख्यतः पुरुषों के पास ही रहता है। आंदोलन में काम करने वाले साथी कार्यकर्ता भी स्त्री कार्मिकों या अपने कुटुम्ब की स्त्रियों के प्रति समानतापूर्ण व्यवहार नहीं करते।

नीरू: हां, ऐसे बहुत लोग होते हैं जो बाहर कुछ और अन्दर या घर में कुछ और ही होते हैं।

आशा: जैसे हाथी के दांत - खाने के और, दिखाने के और।

एकता: इसके अतिरिक्त, इन आंदोलनों में भाग लेने वाली मध्यम वर्ग की स्त्री कार्मिकों ने एक बार घर से बाहर निकल कर सार्वजनिक जीवन में कदम रखा था, इससे उन्हें जो अनुभव मिले, उसकी वजह से उनकी स्त्री के नाते संवेदनशीलता बढ़ी और नारीवादी विचारों के उद्भव की भूमिका शुरू हुई।

रेशमा: तुम कहती हो कि नारीवादी विचारों की भूमिका उत्पन्न हुई। इसका अर्थ क्या यह है कि अभी तक उन विचारों को क्रियान्वित नहीं किया गया था?

एकता: हां। ये विचार नारी आंदोलन में क्रियान्वित करने के लिए अन्य अनेक पहलू भी सहायक बने।

कमला: कौन-कौन से पहलू नारी आंदोलन में सहायक बने थे?

एकता: भारत के जन-आंदोलनों के प्रभाव के अलावा, अंतरर्राष्ट्रीय नारी आंदोलन और नारी अध्ययन द्वारा प्रकाशित अभ्यास का प्रभाव भी भारत के नारी आंदोलन के जुझारू दौर की शुरूआत में सहायक बने। पहले हम नारी अध्ययन के बारे में देखेंगे।

नारी अध्ययन और नारी आंदोलन

समस्याओं के गहन अध्ययन के बिना कोई भी आंदोलन आगे नहीं बढ़ सकता और जो अध्ययन आंदोलन की कसौटी पर खरा नहीं उतरता, वह सिर्फ किताबी ही रहता है। भारत में एक तरफ संघर्षशील जन-आंदोलन चल रहे थे, तो दूसरी तरफ नारी अध्ययन के क्षेत्र में भी श्रमजीवी, गरीब स्त्रियों की परिस्थिति से जुड़े अध्ययन हो रहे थे। 1971 में सरकार ने स्त्रियों के दर्जे को लेकर एक समिति बनायी, जिसे निम्न प्रश्नों पर विस्तृत रिपोर्ट तैयार करने का काम सौंपा गया।

- आजादी के बाद जो संवैधानिक, कानूनी व प्रशासनिक कदम उठाये गए हैं, उनका स्त्रियों पर क्या प्रभाव पड़ा?
- जटिल सामाजिक परिवर्तनों का प्रभाव स्त्रियों के विविध स्तरों पर कैसा पड़ा?
- स्त्रियां राष्ट्रीय विकास में पूरी तरह से योगदान दे सकें, इसके लिए कौन-कौन से कदम उठाये जाने चाहिए?

फरजाना: इस अध्ययन का क्या नतीजा आया?

एकता: इस समिति ने 1974 में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की, जिसका शीर्षक है **'समानता की तरफ'** (Towards Equality)। इस रिपोर्ट में आंखें खोल देने वाले विवरण प्रकाशित किये गए थे। इससे स्पष्ट हुआ कि संविधान द्वारा प्रदत्त समानता सिर्फ कागज पर ही रही है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी स्त्रियों की दशा में उल्लेखनीय सुधार नहीं हुआ। इस रिपोर्ट में लिखा गया है कि **"समाज परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया का प्रभाव अधिकांश स्त्रियों पर विपरीत पड़ा है और नये प्रकार के असंतुलन और असमानताएं उत्पन्न हुई हैं।"**

अतः इस रिपोर्ट से बहुत सारे निष्ठावान विद्वानों की आंखें खुल गईं। 'भारत के संविधान में स्त्रियों को समानता मिली है, अतः स्त्रियों की अधिकांश समस्याएं सुलझ गई है' ऐसी उनकी मान्यता

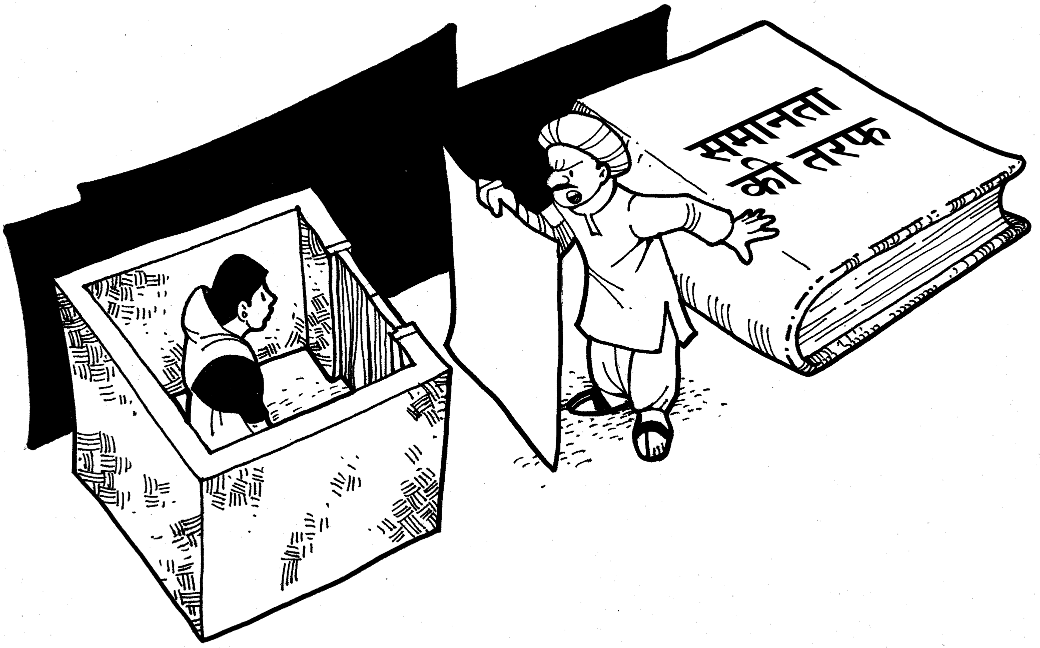

जो मध्यम वर्ग की शिक्षित स्त्रियों के अनुभव के आधार पर पैदा हुई थी, उसे धक्का लगा, और उन्होंने नारी के अध्ययन में साधारण स्त्रियों और उनके जीवन-संघर्ष को प्राथमिकता देने की शुरूआत की।

रेशमा: और अंतरराष्ट्रीय आंदोलन का क्या प्रभाव पड़ा?

अंतर्राष्ट्रीय नारी आंदोलन का प्रभाव

एकता: इस दौरान अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विश्व का नारी आंदोलन प्रभावी बना था और तमाम देशों की अंतरराष्ट्रीय संस्था यूनाइटेड नेशन्स ओर्गेनाइजेशन अर्थात् यू.एन.ओ. में भी उसका प्रभाव पड़ा था। अतः यू.एन.ओ. ने मैक्सिको में विश्व महिला सम्मेलन बुलाया, जिसमें 1975 के वर्ष को अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में घोषित किया गया था।

शकरी: महिला वर्ष घोषित करने से क्या फायदा हुआ?

एकता: महिला वर्ष के आयोजन के अंतर्गत दुनिया के तमाम देशों में स्त्रियों के लिए अनेक कार्यक्रम हुए, जिनमें स्त्रियों को इकट्ठा होकर अपनी समस्याओं पर चर्चा करने का अवसर मिला। भारत में भी पहली बार अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस मनाया गया। देश भर में अनेक कार्यक्रम हुए। उस वर्ष महाराष्ट्र में समाजवादियों ने देवदासियों का सम्मेलन आयोजित किया और पूना में वामपंथी महिलाओं की संयुक्त परिषद 'युनाइटेड वीमेन्स लिबरेशन स्ट्रगल'

के नाम से आयोजित की गई जिसमें तमाम वर्ग व जाति की महिलाओं ने भाग लिया। त्रिवेन्द्रम में वामपंथी विद्वानों और जिज्ञासुओं का सम्मेलन हुआ। पूना में पुरोगामी महिला संगठन और मुंबई में स्त्री मुक्ति संगठन इस समय में उत्पन्न हुए। दलित आंदोलन में से महिला समता सैन्यदल खड़ा हुआ, जिसने स्त्रियों के दमन की समस्या को दलितों के दमन की समस्या के साथ जोड़ने का काम किया।

आशा: समकालीन नारी आंदोलन में सबसे पहले कौन सा संगठन शुरू हुआ?

एकता: 1974 में हैदराबाद में शुरू हुए प्रोग्रेसिव आर्गेनाइजेशन ऑफ वीमेन (POW) को समकालीन नारी आंदोलन का प्रथम संगठन कहा जा सकता है। इस संगठन ने पहली बार नारी समानता की बात को नारीवादी विचारों के साथ जोड़ा। इसकी दृष्टि से स्त्रियों के दमन हेतु स्त्री-पुरुष के बीच का श्रम-विभाजन और उसे मान्यता प्रदान करने वाली संस्कृति जिम्मेदार थी। उसने स्त्रियों से संबंधित अनेक सवाल उठाये जैसे - वेश्या व्यवसाय, स्त्रियों को उपभोग का साधन मानने वाले चित्रण, दहेज, बाल-विवाह, समान वेतन व प्रसूति-अवकाश की समस्या, साथ ही स्त्री कार्मिकों की काम की दशा सुधारने की समस्या। दहेज और छेड़छाड़ पर उसके द्वारा शुरू किये गए आंदोलन में एक समय हजारों कॉलेज छात्राएं जुड़ी थीं। 1975 में आपातकाल घोषित होने पर इस संगठन के नेताओं को जेल में डाल दिया गया और उस समय पूरे आंदोलन को कुचल दिया गया।

रेशमा: आपातकाल घोषित किया गया, क्या मतलब?

एकता: आपातकाल अर्थात् देश की आंतरिक सुरक्षा खतरे में हैं, इस बहाने से संविधान द्वारा दिये गए मूलभूत अधिकारों को स्थगित कर देना। 26 जून 1975 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने जन-आंदोलनों को कुचलने के लिए आपातकाल लादा था।

नीरू: मतलब?

एकता: मतलब, ऐसे अध्यादेश लाये गए कि मूलभूत अधिकारों के क्रियान्वयन के लिए लोग सरकार के खिलाफ कोर्ट में न जा सकें। सरकार के विरुद्ध, सरकार की नीति के विरुद्ध या अपने लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले तमाम लोगों को जेल में डाल दिया गया था। इस हेतु सक्रिय बने नागरिक और लोकतांत्रिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने वाले समूहों के संघर्ष को तोड़ने के लिए सरकारी दमन तंत्र द्वारा स्त्रियों पर बलात्कार का प्रयोग भी किया गया था। इससे इस संबंध में तमाम प्रगतिशील नागरिकों का ध्यान व शक्तियां आपात विरोधी लोकतांत्रिक व नागरिक अधिकारों हेतु संघर्ष पर केन्द्रित हो गयी थीं। संयुक्त जन संघर्ष के परिणाम स्वरूप सरकार के 1977 में आपातकाल हटाना पड़ा और फिर से एक बार नारी आंदोलन को विकसित होने का मौका मिला। देश भर में मुख्य रूप से बड़े शहरों में नये प्रकार के नारी समूह विकसित होने लगे। ये नये समूह 'स्वायत्त नारी संगठनों' के रूप में विख्यात हुए। नारी आंदोलनों का यह चरण 'स्वायत्त नारी आंदोलन के चरण' के रूप में विख्यात हुआ।

फरजाना: स्वायत्त नारी संगठनों से क्या मतलब है?

कमला: और स्वायत्त नारी आंदोलन पहले के आंदोलनों से भिन्न कैसे था?

एकता: स्वायत्त नारी आंदोलन का मतलब और उनके द्वारा उठाये गये मुद्दों के बारे में हम अगले विभाग में चर्चा करेंगे और हमारे संघर्ष के इतिहास की जो समझ हमने पाई है उसको हमारे कार्य और मुद्दों के साथ जोड़ने की कोशिश भी करेंगे।

इस विभाग की चर्चा का अंत स्वायत्त नारी आंदोलन की शुरूआत के समय में रचे गये एक गाने से करेंगे।

हे जी रे

हे जी रे ड ड ड ड ड

हम परिवार के झंझट को, रूढियों के बन्धन को

परतंत्री मानस को ठुकरा के आये....

हम नारी दमन मिटाने, नारी शोषण भगाने,

पतियों की मारधाड़ बन्द करने आये...

हम अपनी बहनों के साथ मोर्चे में आये...

दहेज, बलात्कार, शासकों के अत्याचार

जाति प्रथा का नाश करने आये ड ड ड

हम धर्मों के भेदभाव, ऊँच नीच के बन्धन

निकम्मे फन्दों को तोड़कर आये ड ड ड

हम अपनी बहनों के साथ...

हम खेतों खदानों से, कल कारखानों से,

गाँवों और शहरों से एक साथ आये ड ड ड

देख देख और अंध काल सैन्य आये,

अत्याचारी तेरा नाश करने मोर्चे में आये

हम अपनी बहनों के साथ...

- विभूति पटेल

संदर्भ साहित्य की सूची

१. बेटा क्या है? बेटी क्या है? लेखिका कमला भसीन, प्रकाशकः जागोरी, नई दिल्ली।

२. पितृसत्ता क्या है? लेखिका कमला भसीन, प्रकाशकः जागोरी, नई दिल्ली।

३. अन्डरस्टेन्डिंग जेन्डर, कमला भसीन, विमेन अनलिमिटेड, नई दिल्ली।

४. भारतीय महिला आंदोलनः कल आज और कल, लेखिका दीप्ति प्रिया महरोत्रा, प्रकाशकः संपूर्णा ट्रस्ट, नई दिल्ली।

५. ध हिस्ट्री ओफ डुइंग, राधा कुमार, काली फोर विमेन, नई दिल्ली।

६. विमेन इन मोडर्न इन्डिया, गेराल्डीन फोर्ब्स, केम्ब्रिज युनिवर्सिटी प्रेस

७. विमेन राईटींग इन इन्डिया, सुज़ी थारु और के. ललिथा (संपादीत) वोल्युम-1 600 बी.सी. टु अर्ली 20 सेन्च्युरी, ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

८. विमेन पायोनियरः (संपादीत) सुशिला नायर एन्ड कमला मान्केकर, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

९. मूल सोता उखडेला, (गुजराती में) कमलाबहेन पटेल, आर.आर.शेठ कं।

१०. स्वतंत्रता नी सरवाणीओ, (गुजराती में) सहियर (स्त्री संगठन) वडोदरा

११. आदीवासी महिला जीवनः स्थिति और संघर्ष, स्पेस्यील इश्यु ऑफ अंतरंग सखी, मई, मुंबई।

१२. दलित 'विरांगानास एन्ड रेईनवेन्शन ऑफ 1857', चारू गुप्ता और इनवीझीब्लीसींग ध अधर इन हिस्ट्री - कर्टिसन्स एन्ड ध रीवोल्ट, लता सिंघ इन इकोनोमिक एन्ड पोलिटिकल वीक्ली, मई 12, 2007-1857

१३. 'राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाए' लेख, साधना आर्य, निवेदीता मेनन, जीनी लोकनीता संपादीत पुस्तक, "नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दे" प्र. दिल्ली विश्व विद्यालय

सहियर (स्त्री संगठन) 1984 से स्वायत्त महिला संगठन के रूप में कार्यरत है। 'सहियर' का उद्देश्य ऐसे समाज़ की रचना करना है जिसमें किसी भी तरह के शोषण, दमन, अन्याय या अत्याचार के लिए स्थान न हो एवं जिसमें नारी को मनुष्य के रूप में सामाजिक दर्जा प्राप्त हो।''

"नारी मुक्ति के बिना मानव मुक्ति संभव नहीं है एवं मानव मुक्ति के बिना नारी मुक्ति असंभव है" की समझ के साथ यह महिलाओं के अधिकारों एवं मानव अधिकारों के संघर्ष को आगे ले जाने के लिए विभिन्न गतिविधियां करता है।

- नुक्कड़ नाटकों, जागृति गीतों एवं गरबा शिविरों, निबंध लेखन, सार्वजनिक प्रदर्शन आदि जैसे जागृति कार्यक्रमों के द्वारा समाज के बृहद समुदाय के महिलाओं के प्रति पुरुष प्रधान दृष्टिकोण को बदलने का प्रयत्न करता है एवं उस समझ को समाज तक ले जाने के लिए संशोधन, प्रकाशन, पुस्तकालय जैसी गतिविधियां करता है।
- महिलाओं पर होने वाली हिंसा एवं महिलाओं को प्रभावित करने वाले अन्य कानूनों में सुधार लाने के लिए तथा मौजूदा कानूनों को क्रियान्वित कराने का अभियान जारी है।
- संप्रदायवाद, जातिवाद एवं सीमांत समूहों के मानवाधिकार हनन की घटनाओं में मानवाधिकार संगठनों के साथ मिलकर कार्य करता है।
- परिवार, समाज एवं कार्य स्थल पर, हिंसा, अन्याय का सामना करने वाली महिलाओं के साथ खड़ा रहकर उनको परामर्श, कानूनी सलाह एवं संवेदनात्मक सहारा देता है।
- किशोरियों के व्यक्तित्व के विकास एवं प्रतिभा को निखारने में सहायक बनता है।
- झोंपड़वासी, श्रमजीवी एवं निम्न मध्यम वर्ग की महिलाओं का मंडल बनाकर बचत, जागृति एवं दैनिक समस्याओं को हल करने के लिए उनको संगठित करता है।
- संवेदनशील क्षेत्रों में सभी समुदायों की सक्रिय महिलाओं को न्याय, शांति एवं कौमी एकता के लिए नेता बनने के लिए प्रशिक्षण देता है।
- स्वैच्छिक संस्थाओं के कार्यकर्ताओं, सरकारी अधिकारियों, पुलिस तंत्र, शिक्षकों, वकीलों, ट्रेड युनियन के कार्यकर्ताओं एवं अन्य लोक संगठनों के कार्यकर्ताओं को महिलाओं की समस्याओं से परिचित कराने एवं उनमें महिलाभिमुख संवेदनशीलता लाने के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन करता है। अन्य संस्थाओं द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों में विशेषज्ञ (रिसोर्स पर्सन) के रूप में कार्य करता है।

उन्नति - विकास शिक्षण संगठन एक अलाभकारी व गैर-सरकारी संगठन है, जो सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के अंतर्गत 1990 से पंजीकृत है। संगठन का उद्देश्य है सामाजिक समावेश व लोकतांत्रिक अभिशासन को प्रोत्साहित करना ताकि समाज के कमज़ोर वर्गों को सशक्त बनाया जाए जिससे वे विकास की मुख्य धारा व निर्णय प्रक्रियाओं में प्रभावी और निर्णयात्मक रूप से भागीदारी निभा सकें।

संगठन पश्चिमी भारत के नागरिक समूहों, स्वैच्छिक संस्थाओं, स्थानीय अभिशासन के जन प्रतिनिधियों और सरकार के साथ मिलकर मुद्दा आधारित व नीतिगत शैक्षणिक सहयोग प्रदान करने की दिशा में कार्यरत है। सहभागी शोध, लोकशिक्षण, पैरवी, क्षेत्र स्तरीय संघटन व बहुहिताधिकारियों के साथ क्रियान्वयन करना संगठन की मुख्य कार्य पद्धतियाँ हैं। नागरिकों के मूलभूत अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए हम स्थानीय स्तर से लेकर नीतिगत बदलाव हेतु वातावरण बनाने का प्रयास करते हैं जिसमें हमें कमज़ोर लोगों के संघर्ष से प्रेरणा व हमारे सहयोगियों से शक्ति मिलती है। वर्तमान में सभी गतिविधियाँ निम्नांकित कार्यक्रम केन्द्रों द्वारा आयोजित की जाती हैं:

१. सामाजिक समावेश व सशक्तिकरण
२. नागरिक नेतृत्व व अभिशासन
३. आपदा जोखिम घटाने के सामाजिक निर्धारक

क्षेत्रीय अनुभवों से प्राप्त सीख को समेकित कर उसे प्रकाशित किया जाता है तथा ज्ञान संसाधन केन्द्र के द्वारा विस्तृत रूप से उसका आदान-प्रदान किया जाता है। हमारा प्रयास है कि सामुदायिक नेतृत्व, खासकर दलितों व महिलाओं के लिए अकादमी बनाएं ताकि वे स्थानीय मुद्दों को प्रभावी रूप से उठा सकें।

नारी
आंदोलन
का इतिहास

भाग - १
स्त्री जीवन संघर्षः प्राचीन काल से भक्ति आंदोलन तक

भाग - २
स्त्री समानता और मताधिकारः विश्व में नारी आंदोलन

भाग - ३
सामाजिक सुधार तथा स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियां

भाग - ४
नारी मुक्ति आंदोलनः समस्याएं और चुनौतियाँ

उन्नति

उन्नति
विकास शिक्षण संगठन
जी - 1/200, आज़ाद सोसायाटी,
आंबावाड़ी, अहमदाबाद - 380 015
फोनः 079-26746145, 26733296
ई-मेलः sie@unnati.org
वेबसाईटः www.unnati.org

sahiyar
सहियर (स्त्री संगठन)
जी - 3, शिवांजली फ्लैट्स,
जाधव अमीश्रद्धा सोसायटी के पास
नवजीवन, आजवा रोड़, वड़ोदरा - 390 019
फोनः 0265-2513482,
ई-मेलः sahiyar@gmail.com